• वर्ष ६८ • अंक १४ • मूल्य ₹ २०

जुलाई (द्वितीय) २०२५

पाक्षिक

परोपकारी

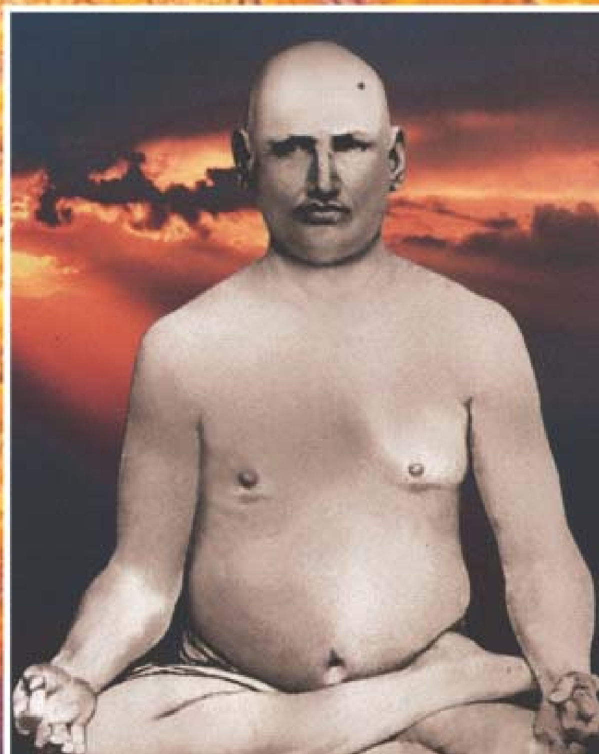

महान् समाज सुधारक, आर्य समाज के संस्थापक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

गुरु पुर्णिमा के अवसर पर गुरुओं को सादर नमन

ऋषि उद्यान स्थित महर्षि दयानन्द संग्रहालय का अवलोकन करते आचार्य बालकृष्ण।

आचार्य बालकृष्ण का स्वागत करते स्वामी ओमानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द महान समाज सुधारक, देश की आजादी का मार्ग प्रशस्त किया - आचार्य बालकृष्ण

अजमेर। महर्षि दयानन्द ने गुलाम भारत में आजादी की अलख जगाई और भारतीयों में पुन: आत्म गौरव का भाव पैदा किया। वे महान समाज सुधारक थे।

पतंजलि योग पीठ के आचार्य बालकृष्ण ने मंगलवार यहां पुष्कर रोड स्थित ऋषि उद्यान में यह उदगार व्यक्त किए। परोपकारिणी सभा के न्यासी स्वामी ओमानन्द सरस्वती से चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि अजमेर महर्षि दयानन्द की निर्वाण स्थली है। वे आज यहां उनसे जुड़े स्थलों का अवलोकन करने आए हैं। ऋषि उद्यान में महर्षि की अस्थियां विसर्जित की गई थीं। परोपकारिणी सभा के प्रधान रहे स्वर्गीय डॉक्टर धर्मवीर ने इसे भव्य रूप दिया और अनेक विकास कार्य कराए। आचार्य बालकृष्ण ने ऋषि उद्यान के महर्षि दयानन्द संग्रहालय को भी देखा। महर्षि दयानन्द की निजी उपयोग की वस्तुओं को देखकर वे भावुक हो गए। सभा की न्यासी श्रीमती ज्योत्स्ना धर्मवीर ने उन्हें डॉक्टर धर्मवीर की पुस्तकों के साथ अन्य वैदिक ग्रंथ भी भेंट किए। जिला परिषद के पूर्व सदस्य गिरधारी लाल अग्रवाल ने पतंजलि योग पीठ की ओर से अजमेर में गुरुकुल और धर्मार्थ चिकित्सालय खोलने की मांग की। ऋषि उद्यान पहुंचने पर स्वामी ओमानन्द सरस्वती ने आचार्य बालकृष्ण का ओम का दुपट्टा पहनाकर स्वागत किया। इस मौके पर परोपकारिणी सभा के न्यासी डॉक्टर वेदप्रकाश विद्यार्थी और कई अन्य वैदिक विद्वान् भी मौजूद रहे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।*

वर्ष : ६७ अंक : १४

दयानन्दाब्द: २०१

विक्रम संवत् श्रावण कृष्ण २०८२

कलि संवत् - ५१२६

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२६

▪

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

▪

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,

केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

०८८९०३१६९६१

▪

मुद्रक- डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

८२०९५८६१६६

▪

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

जुलाई द्वितीय, २०२५

अनुक्रम

०१. जन्मना जाति=जातीय विद्वेष	सम्पादकीय	०४
०२. श्री पं. युधिष्ठिर मीमांसक	डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री	०६
०३. पुरुष अध्याय - यजुर्वेद ३१-६	डॉ. धर्मवीर	११
०४. स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती जी...	श्री कन्हैयालाल आर्य	१४
०५. सिंहावलोकन	श्री लक्ष्मण जिज्ञासु	१९
०६. महर्षि दयानन्द और पौराणिक...	डॉ. महावीर मीमांसक	२२
* नवीन प्रकाशन पर ५० प्रतिशत की विशेष छूट		२७
०७. स्मृतिशेष हरिश्चन्द्र गुरुजी	डॉ. नयनकुमार आचार्य	२८
* साधना, स्वाध्याय, सहयोग के लिए निमन्त्रण		३०
०८. निवेदन		३१
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		३२
* प्रवेश सूचना		३२
०९.संस्था की ओर से....		३३
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

जन्मना जाति=जातीय विद्वेष

अभी २१ जून को ग्राम-दादरपुर, तहसील-बकेवर, जिला-इटावा उत्तरप्रदेश में घटित घटना ने जन्मना जाति प्रथा को लेकर आलोचना-प्रत्यालोचनात्मक बयानों/टिप्पणियों का न थमने का सिलसिला प्रारम्भ कर दिया है। भागवत अथवा किसी अन्य कथा का आयोजन कोई चर्चा का विषय नहीं होना चाहिये। प्रतिदिन कहीं न कहीं कोई न कोई कथा होती ही रहती है।

दादरपुर के किन्हीं तिवारी ने भागवत कथा का आयोजन किया। कथा व्यास के रूप में जवाहरपुर-इटावा के मुकुटमणि अग्निहोत्री थे। विवाद का मूल यह बताया जा रहा है कि कथा व्यास अग्निहोत्री-ब्राह्मण न होकर जन्मना जाति के अनुसार यादव हैं। जाति का पता चलने पर उनके साथ मारपीट की गई। शिखा-चोटी काट दी गई और किसी महिला के मूत्र के उन पर छींटे दिए गए।

उक्त घटना की व्यापक प्रतिक्रिया हुई। कथावाचक के अपमान को जातीय अपमान मानकर एक जातीय संगठन ने दादरपुर कूच का ऐलान कर दिया। इसके आयोजक गगन यादव का नाम लिया जा रहा है, जिसे पुलिस प्रशासन ने इटावा में ही रोक लिया। इस प्रकार की अनियन्त्रित भीड़ प्राय: अराजकतापूर्ण व्यवहार करती है, वही वहाँ हुआ।

इस घटना के सन्दर्भ में कुछ बिन्दु चिन्तनीय हैं-

आयोजकों के अनुसार उनकी भावनाएँ आहत हुईं, क्योंकि उन्होंने ब्राह्मण समझकर उसके (कथावाचक के) चरण स्पर्श किए। उसकी जाति का पता लगने पर उन्हें धोखा होने का पता चला। इससे अपने से निम्न जाति के चरणस्पर्श करने के कारण उनके जातीय अभिमान को इतनी ठेस लगी कि उसके प्रतिक्रिया स्वरूप कथावाचक के साथ ग्रामीणों ने भावावेश में यह व्यवहार किया।

यह मान लेने पर कि कथा व्यास यादव तथा आयोजक/यजमान जन्मना ब्राह्मण है। क्या आयोजकों ने कभी यह विचार भी किया कि वह जिस कथा का श्रवण करना चाहते हैं वह किसकी कथा है? सभी जानते हैं कि भागवत कथा के नायक श्रीकृष्ण हैं, जो इस जातिप्रथा के अनुसार कथा व्यास के भी पूर्वज हैं। कैसी विडम्बना है कि पूर्वज को तो महापुरुष से भी बढ़कर भगवान् का स्थान दें और उसी के वंशज को उसकी (श्रीकृष्ण) की कथा कहने पर अपमानित होना पड़े।

राजनेता अपनी दृष्टि से इसे राजनीतिक लाभ में परिवर्तित करना चाहते हैं। उन्हें कथा व्यास के बहाने सम्पूर्ण जाति का अपमान होता दिख रहा है। अत: जातीय भावनाएं उभार कर वह अपने राजनीतिक संगठन को सुदृढ़ करना चाहते हैं।

दूसरी ओर आयोजक वर्ग के समर्थकों को अपने व्यवसाय जिसमें वह अपना एकाधिकार मानते हैं, में अन्य वर्ग (ब्राह्मणेतर) की घुसपैठ दिखाई देती है।

अविमुक्तेश्वरानन्द सरस्वती (शंकराचार्य ज्योतिष् पीठ) कहते हैं कि सार्वजनिक रूप से कथा कहने का अधिकार केवल जन्मना ब्राह्मण को है। व्यक्तिगत रूप से कोई कथावचन करता है तो अलग बात है। बात केवल इतनी ही नहीं है। शंकराचार्य तो मूत्र के छींटे देने (उनके शब्दों में वह चाहे जल के छींटे हों अथवा मूत्र के) का बचाव करते हुए उसे शुद्धिकारक कह रहे हैं। अर्थात् उनकी दृष्टि में यह कोई अपराध

(मूत्र के छींटे देना) नहीं हुआ।

२१वीं सदी में भी इस प्रकार की सोच इस धर्म की कितनी गरिमा वृद्धि करेगी (व्यक्ति की गरिमा को गिराकर क्या धर्म की गरिमा स्थापित की जा सकती है? उत्तर है नहीं?) यह आज सभी हिन्दुओं के लिए चिन्तन के साथ चिन्ता का विषय होना चाहिए। यद्यपि कुछ कथावाचकों तथा धर्माचार्यों ने शिखा काटना, छींटे देने की निन्दा भी की है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है, जो पीड़ित पक्ष तथा उनकी जाति को ललकार रहा है कि जनेऊ पहन लो, ले आओ कांवड, देख लिया महादेव आदि-आदि। इस ब्राह्मणवाद-मनुवाद के सर्वविध विरोध के लिए प्रेरित कर रहा है।

इस सन्दर्भ में आयोजकों के द्वारा कथावाचक के दो आधारकार्ड मिलने की बात कही जा रही थी, किन्तु अब उसके द्वारा आयोजिका के हाथ को स्पर्श करने की बात जोर-शोर से उठाई जा रही है।

उक्त घटना के कारण इस धर्म का क्या भला अथवा बुरा हो रहा है-यह किसकी चिन्ता का विषय है? क्या जन्मना जाति-ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थापित करने मात्र से सम्पूर्ण हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा बढ़ेगी? इस प्रकार की घटनाओं के कारण अन्य धर्मावलम्बी क्या पीड़ित-प्रताड़ित वर्गों को अपने साथ जोड़ने अथवा हिन्दू समाज से पृथक् करने के लिए पूर्वापेक्षया अधिक प्रयत्नशील नहीं होंगे? बढ़ता जातीय विद्वेष क्या इस समाज को टुकड़े-टुकड़े में बाँटकर उसे शक्तिहीन नहीं कर रहा है?

दादरपुर की इस घटना की प्रतिक्रिया दादरपुर की घटना के पीड़ित पक्ष द्वारा अन्यत्र ब्राह्मण कथावाचक को अपमानित करने के समाचार भी प्रकाशित हो रहे हैं, किन्तु हिन्दू धर्माचार्य बढ़ते जातीय विद्वेष की उपेक्षा कर अपने-अपने पक्ष के औचित्य का प्रतिपादन कर रहे हैं।

उन्नीसवीं सदी में महर्षि दयानन्द ने जिस गुण कर्माश्रित समाज पर बल दिया था और उसके परिणामस्वरूप जन्मना ब्राह्मणेतर वर्ग से अनेक वेदज्ञ तथा संस्कृतज्ञ हुए वह सब चक्र क्या थमता नहीं दिखाई देगा? जन्मना जाति के समर्थक यही चाहते हैं, किन्तु वह भूल रह हैं सम्पूर्ण समाज संगठित होकर तो सुरक्षित रह सकता। दूसरों को उपेक्षित कर स्वयं की महत्ता को स्थापित करने वाले १९९० के आसपास कश्मीर में उनके साथ क्या हुआ- इसे भूल गए हैं। दिन-रात कृष्ण का राग अलापने वाले-

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'

को भी भूल गए प्रतीत होते हैं।

आज सर्वाधिक आवश्यकता इस जातीय विद्वेष को दूर करने की है। साथ ही गुणकर्माश्रित समाज के संगठन की भी है। राजनीतिज्ञ तो जातीय जनगणना आदि माध्यमों से समाज को बाँटकर सत्ता प्राप्ति के प्रयत्न करेंगे ही। धर्माचार्य आगे बढ़कर इस व्यवस्था परिवर्तन के लिए कुछ करेंगे- ऐसा दिखता नहीं है, किन्तु सर्वाधिक दुःखद एवं आश्चर्यजनक है कि-

''शूद्रो ब्राह्मणतामेति, ब्राह्मणतिश्चै शूद्रताम्''

का उद्घोष करने वाला आर्यसमाज आज मौन है। व्यक्तिगत रूप से की गई कुछ टिप्पणियों को छोड़कर इस घटना का विरोध सांगठनिक विरोध के रूप में दिखाई नहीं दे रहा है। यदि आर्यसमाज का नेतृवर्ग अब भी मुखर नहीं हुआ, तो आने वाले समय में उसके सामने चुनौती बढ़ने वाली ही है। क्या आर्यसमाज सक्रिय हो सकेगा?

डॉ. वेदपाल

श्री पं. युधिष्ठिर मीमांसक

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

पिछले अंक का शेष भाग...

३५. वैदिक-स्वर-मीमांसा- इसमें वैदिक ग्रन्थों में प्रयुक्त उदात्त अनुदात्त स्वरित आदि स्वरों का वाक्यार्थ के साथ क्या सम्बन्ध है, स्वर-परिवर्तन से अर्थ में किस प्रकार परिवर्तन होता है, स्वर-शास्त्र की उपेक्षा से वेदार्थ में कैसी भयंकर भूले होती हैं, इत्यादि अनेक विषयों का सोपपत्तिक सोदाहरण प्रतिपादन किया है। अन्त में उदात्तादि स्वरों के विभिन्न प्रकार के संकेतों स्वरचिणों की सोदाहरण व्याख्या की है। परिशिष्ट में मन्त्र संहिता से पदपाठ में परिवर्तन के नियमों की सोदाहरण विवेचना की है-१९५८ ई.। परिवर्धित द्वितीय संस्करण में पाणिनीय व्याकरण के अनुसार स्वर विषय का संक्षेप से ज्ञान कराने के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत 'सौवर' ग्रन्थ भी अन्त में जोड़ दिया है-१९६३ ई., पुनः संस्कृत और परिवर्धित तृतीय संस्करण-१९८५ ई.।

३६. संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र का इतिहास (भाग-1)- इस ग्रन्थ में पाणिनि से प्राचीन तेईस वैयाकरणों का इतिवृत्त, उसमें अनेक आचार्यों के उपलब्ध सूत्रों का संकलन, पाणिनि और उसके व्याकरण पर टीका-टिप्पणी लिखने वाले लगभग १६० आचार्यों, तथा पाणिनि से उत्तरवर्ती १८ प्रमुख व्याकरण-प्रवक्ताओं और उनके लगभग १०० व्याख्याताओं का इतिहास लिखा गया है। न केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी में, अपितु संसार की किसी भी भाषा में संस्कृत व्याकरणशास्त्र के इतिहास पर इतना विस्तृत ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ। प्रथम संस्करण-१९५१ ई., द्वितीय परिवर्धित संस्करण-१९६३ ई., तृतीय परिवर्धित संस्करण-१९७३ ई., चतुर्थ परिवर्धित संस्करण-१९८४ ई.।

३७. संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास (भाग-2)- इसमें व्याकरणशास्त्र के परिशिष्टरूप धातुपाठ, उणादिसूत्र, लिंगानुशासन, परिभाषापाठ और फिट्सूत्रों के प्रवक्ताओं और व्याख्याताओं का इतिवृत्त लिखा गया है। अन्त में प्रातिशाख्यों के प्रवक्ता और व्याख्याता, व्याकरण शास्त्र के दार्शनिक ग्रन्थकार तथा व्याकरणप्रधान लक्ष्यात्मक काव्यग्रन्थों के रचयिताओं का इतिहास भी दिया है। प्रथम संस्करण-१९६२ ई., द्वितीय परिवर्धित संस्करण-१९७३ ई., तृतीय परिवर्धित संस्करण-१९८४ ई.।

३८. संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास (भाग-3)- इसमें अवशिष्ट विषय, अनेक परिशिष्ट तथा सूचियाँ आदि दी गई हैं। प्रथम संस्करण-१९७३ ई., परिवर्धित संस्करण-१९८५ ई.।

मीमांसक जी के लेखन के विषय का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि उन्होंने ऋषि दयानन्द के जीवन चरित, पत्र-विज्ञापन सहित सभी ग्रन्थों का ऐतिहासिक तथा शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में गम्भीर अध्ययन व सम्पादित कर प्रामाणिक संस्करण प्रस्तुत किया है-

३९. ऋग्वेद भाष्य (संस्कृत-हिन्दी)

स्वामी दयानन्द विरचित 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' सहित प्रति भाग सहस्राधिक टिप्पणियाँ, १०-११ प्रकार के परिशिष्ट व सूचियाँ। १-३ भाग।

४०. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

मीमांसक जी द्वारा सम्पादित ऋषि की कृति 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' का यह विशिष्ट संस्करण है। (अ) इसमें कतिपय पाठ हस्तलेख के अनुसार शुद्ध किये गये हैं। (ब) कतिपय पाठ-विपर्यासों को यथास्थान रख दिया गया है। (स) आर्यभाषा में छुटे हुए पद-पदार्थ को संस्कृत-भाषार्थ के आधार पर पूरे किये गये

हैं। (द) आर्यभाषा में जो पाठ संस्कृत भाषा के विपरीत अथवा असम्बद्ध था, वहाँ संशोधन किया गया तथा ऐसे विशिष्ट परिवर्तनों का निर्देश टिप्पणी में किया है। इस प्रकार अन्य अनेक विशेषताओं से युक्त 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' का यह संस्करण प्रथम बार २०२४ वि.सं. में रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित किया गया।

४१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-परिशिष्ट

प्रथम- इसमें ऋषि दयानन्द की 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' पर किये गये पण्डितों के आक्षेपों का ऋषि दयानन्द सरस्वती द्वारा दिए गए उत्तर पत्र तथा ग्रन्थों का संग्रह है।

द्वितीय- ऋग्वेदभाष्य के नमूने का अंक पर जो आक्षेप पण्डितों ने किये थे, उनका स्वामी दयानन्द जी द्वारा दत्त उत्तर भी इसमें समाविष्ट है। प्रथम संस्करण-१९६७ ई.।

४२. सत्यार्थ-प्रकाशः (आर्यसमाज शताब्दी संस्करण-राजसंस्करण)

शुद्धपाठयुतं विविधटिप्पणीभिरलंकृतं प्रामाणिकं संस्करणम्। द्वितीय संस्करण-१९७५ ई1, पृष्ठ सं.-१२७२ (११४+११५८)। मीमांसक जी द्वारा सम्पादित इस 'सत्यार्थ-प्रकाश' की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं- (१) द्वितीय संस्करण के आधार पर मूल पाठ का संरक्षण। (२) उद्धृत वचनों का शुद्ध पाठ तथा मूलस्थान का निर्देश। (३) ३२०० टिप्पणियों के साथ अत्युपयोगी विविध प्रकार के १३ परिशिष्ट। (४) सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण (१८७५ ई.) के अत्युपयोगी कुछ विशिष्ट पाठों का परिशिष्ट में संकलन। (५) विविध संस्करणों का विवेचनात्मक सम्पादकीय वक्तव्य।

४३. संस्कारविधिः (आर्यसमाज शताब्दी संस्करण)

पृष्ठ-४६० (४९+४११)। प्रथम संस्करण-१९७४ ई.। सहस्राधिक टिप्पणियों, १२ परिशिष्ट। संस्कारविधि के दो हस्तलेख हैं। प्रथम हस्तलेख को रफ कॉपी तथा द्वितीय हस्तलेख को प्रेस कॉपी कहते हैं। ऋषि दयानन्द ने प्रेस कॉपी का मात्र ४७ पृष्ठ तक का ही संशोधन किया था, तभी उनका देहान्त हो गया। ऋषि के निधन के बाद उनके सहयोगी दो पण्डित-ज्वालादत्त शर्मा तथा भीमसेन शर्मा ने इन दोनों हस्तलेखों के आधार पर संस्कार विधि का द्वितीय संस्करण तैयार किया और प्रकाशित किया।[१९] उसमें वेदादि शास्त्रों, गृहसूत्रों के प्रमाण तो थे किन्तु पते नहीं थे। मीमांसक जी ने अपने सहयोगी पण्डित विजयपाल के सहयोग से सभी प्रमाणों के पते देकर तथा शुद्ध पाठ का सम्पादन इस संस्करण में किया है।[२०]

४४. वेदोक्त संस्कार प्रकाश

पं. बालाजी विछ्ठल गांवस्कर द्वारा मूल मराठी में लिखे गये ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद। इसी का सम्पादन पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने किया है। प्रथम संस्करण-१९८५ ई., पृष्ठ-२३९। इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद ऋषि दयानन्द के पुस्तक संग्रह में था। यह गुजराती अनुवाद ही संशोधित संस्कार विधि का आधार बना।[२१]

४५. वैदिक-नित्यकर्मविधि

ऋषि दयानन्द रचित संस्कार विधि तथा पंच महायज्ञ विधि में विवृत पाँच महायज्ञों में विनियुक्त मन्त्रों की विशद व्याख्या (पदार्थ सहित)। साथ ही प्रत्येक विधि का विवेचन भी किया गया है तथा अनेक शंकाओं का समाधान भी। प्रारम्भ में ३६ (१६+२०) पृष्ठों की भूमिका में आवश्यक विवरण है। अन्त में कुछ अन्य कृत्यों के मन्त्र, प्रभु भक्ति के पद्य-गीतिका और भजन हैं। साथ ही (अ)..... चिह्नों का स्वरूप और उच्चारण (ब) समिदाधान मन्त्रों के सम्बन्ध में क्रमशः प्रथम और द्वितीय परिशिष्ट हैं। कुल पृष्ठ-२५१, प्रथम संस्करण-२०२८ वि.सं., द्वितीय संस्करण-२०३६ वि.सं., चतुर्थ संस्करण-२०५० वि.सं.।

४६. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन

प्रथम तथा द्वितीय-इन दो भागों में ऋषि दयानन्द के

पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह है। तृतीय तथा चतुर्थ भाग में ऋषि दयानन्द के प्रति अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखित पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह किया गया है। द्वितीय और चतुर्थ भाग के अन्त में पत्रों से सम्बद्ध अनेक परिशिष्ट जोड़े गये हैं। तृतीय संस्करण-प्रकाशनकाल-१९८१-१९८३ ई.।

मीमांसक जी अपने जीवनकाल की संध्या में इस ग्रन्थ के पुनः संशोधन और परिवर्तन में जुटे हुए थे, क्योंकि तृतीय संस्करण (१९८१-८३ ई.) के बाद भी स्वामी दयानन्द से सम्बद्ध नये-नये पत्र प्रकाश में आ रहे थे, उनका यथोचित स्थानों पर संयोजन तथा तत्सम्बद्ध टिप्पण देना तथा पत्र-संख्या और पूर्ण-संख्या में भी यथोचित परिवर्तन/परिवर्धन करना था। पूज्य मीमांसक जी ने इन पंक्तियों के लेखक से कहा था-'यह कार्य बड़ा आवश्यक है, यदि यह कार्य मैंने नहीं किया तो अब कोई दूसरा इसे नहीं कर पायेगा। अतः मैं सब काम छोड़ कर इस कार्य में जुटा हुआ हूँ।' सन्तोष की बात यह रही कि मीमांसक जी अपने जीवनकाल में इस कार्य को पूरा कर गये। अतः चतुर्थ संस्करण का प्रथम भाग उनके जीवनकाल (अक्टूबर १९९३) में ही छप गया, और उनके निधन के अनन्तर आचार्य विजयपाल जी (आचार्य-पाणिनि महाविद्यालय बहालगढ़, सोनीपत-हरयाणा) ने ऋषि के इस पत्र व्यवहार और विज्ञापन के द्वितीय भाग का चतुर्थ संस्करण मई १९९६ ई. में तथा तृतीय और चतुर्थ भाग क्रमशः फरवरी १९९८ ई. तथा जून १९९९ ई. में प्रकाशित करा दिया।

४७. ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन

इस ग्रन्थ में स्वामी दयानन्द का पौराणिक विद्वानों, ईसाई पादरियों तथा मुसलमान मौलवियों के साथ हुए सभी उपलब्ध शास्त्रार्थों का संग्रह है। पूना में १८७५ ई. में तथा मुम्बई में १८८२ ई. में ऋषि दयानन्द द्वारा दिए गए प्रवचनों, व्याख्यानों तथा उपदेशों का संग्रह भी है। प्रथम संस्करण १८८२ ई., पृष्ठ-५६८ (८+५६०)।

४८. ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास

इस ग्रन्थ में स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रत्येक ग्रन्थ का विशद इतिहास दिया गया है। उनके ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों और उस समय तक अमुद्रित ग्रन्थों का विस्तृत विवरण दिया है। अनेक परिशिष्टों में विविध प्रकार की प्राचीन उपयोगी ऐतिहासिक सामग्री का संकलन किया गया है। प्रथम संस्करण-१९४९ ई., द्वितीय परिष्कृत तथा परिवर्धित संस्करण (१३२ पृष्ठ परिवर्धित)-१९८३ ई., तृतीय संस्करण-२०१८ ई.। (मीमांसक जी के निधन के बाद छपे इस तृतीय संस्करण को प्रमादवश प्रकाशक ने द्वितीय संस्करण छाप दिया है-लेखक)

४९. दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहः (आर्यसमाज-शताब्दी संस्करण)

प्रथम संस्करण १९७५ ई., कुल पृष्ठ-८६६ (१००+७६६)। इसमें निम्न ग्रन्थ संगृहीत हैं-१-स्वामी दयानन्द सरस्वती का आत्म चरित्र (लिखित वा कथित), २-आर्याभिविनय, ३-वेदभाष्य का प्रथम (नमूने का) अंक, ४-भ्रान्ति-निवारण, ५-भ्रमोच्छेदन, ६-पंचमहायज्ञविधि, ७-वेदान्ति-ध्वान्त-निवारण, ८-वेदविरुद्धमतखण्डन, ९-शिक्षापत्री-ध्वान्त-निवारण, १०-भागवत-खण्डनम्, ११-व्यवहारभानु १२-गोकरुणानिधि, १३-आर्योद्देश्यरत्नमाला, १४-चतुर्वेद-विषय-सूची। अन्त में अनेकविध १ से ९ तक परिशिष्ट हैं। कहना न होगा कि ऋषि दयानन्द के इन लघु ग्रन्थों का शुद्धतम पाठ के साथ ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करनेवाला यह संग्रह शोधार्थियों और दयानन्द-वाङ्मय के जिज्ञासुओं के द्वारा संग्रहणीय है।

५०. ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख

संकलयिता-युधिष्ठिर मीमांसक। प्रथम वार २०३९ वि.सं.। इसमें ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से सम्बद्ध ११ महत्त्वपूर्ण अभिलेखों का संकलन किया गया है, जिससे ऋषि दयानन्द के जीवन चरित और उनके ग्रन्थों

तथा आर्य समाज के प्रारम्भिक इतिहास के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक जानकारी मिलती है। दयानन्द और आर्यसमाज-विषयक शोध-गवेषणा के निमित्त इन सामग्रियों का पर्यालोचन अनिवार्य है।

५१. अथ शास्त्रार्थ और सद्धर्मविचार

स्वामी दयानन्द सरस्वती के काशी-शास्त्रार्थ का यथार्थ विवरण उसी वर्ष वि.सं.-१९२६ (१८६९ ई.) में संस्कृत तथा भाषा में छपा था। उसी की यथावत् प्रतिलिपि-परक यह पुस्तिका है, जिसे मीमांसक जी ने अपने अध्यवसाय से प्राप्त किया और इसे प्रकाशित कर दिया। प्रथम संस्करण-१९८७ ई.। शास्त्रार्थ के विवरण के बाद स्वामी जी से किये गये ४४ प्रश्न और उन प्रश्नों का स्वामी जी द्वारा प्रदत्त उत्तर भी संस्कृत तथा भाषा में छपा था, जिसे यहाँ भी छापा गया है। ये प्रश्न किसने किये थे, इसका उल्लेख नहीं है। इस प्रश्नोत्तर से ऋषि दयानन्द के विचारों का क्रमशः विकास भी जाना जाता है। ऋषि दयानन्द की रचनाओं में प्रारम्भिक काल की एक अन्य पुस्तक भागवत खण्डनम् को भी मीमांसक जी ने ही खोजा था और उसे प्रकाशित भी किया था।

५२. मेरी दृष्टि में स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनका कार्य ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन का चतुर्थ संस्करण पं. युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित अन्तिम ग्रन्थ था तो उनके द्वारा लिखित मेरी दृष्टि में स्वासी दयानन्द सरस्वती और उनका कार्य उनके जीवन की अन्तिम कृति थी। यह पुस्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती के लेखकीय जीवन के विभिन्न पड़ावों पर प्रकाश डालती है। स्वामी दयानन्द के सहायक पण्डितों की अज्ञता तथा स्वार्थपरता को भी सामने लाती है। दयानन्द के विचारों का उत्तरोतर विकास-क्रम के साथ-साथ ऋषि के ग्रन्थों के सम्पादन के लिए किन तथ्यों पर ध्यान रखना आवश्यक है, इसे भी सोदाहरण प्रस्तुत करती है। ऋषि के वेदार्थ क्रान्ति सामान्य घटना नहीं अपितु आधुनिक भारत के इतिहास की यह युगान्तर फलश्रुति है-इसे भी सप्रमाण परिपुष्ट करती है। ऋषि के जीवन चरित, ऋषि का पत्र व्यवहार-उपदेश-व्याख्यान तथा शास्त्रार्थ-इन सभी की सहायता से हम ऋषि के दाय (Legacy) को ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इस पुस्तक में आर्यसमाज के इतिहास का स्वर्णिम, रजत, कांस्य और लौह युग की भी अच्छी विवेचना की गई है। अन्त में ऋषि के पत्र पर उठे विवादों का समाधान तथा ग्रन्थ की समालोचना में प्राप्त आलोचनाओं को स्थान देना तथा उसके परिप्रेक्ष्य में अपने विचारों को संशोधित करना (द्वितीय संस्करण) भी ग्रन्थकार की विशेषता है। यह प्रवृत्ति मीमांसक जी के पूरे जीवन और उनके ग्रन्थों के परवर्ती संस्करणों में भी यथोचित दिखलाई पड़ती है। किम्बहुना मीमांसक जी की इस अन्तिम कृति को आर्य जगत् और विद्वज्जगत् में बहुत ही मान प्राप्त हुआ और इसे मूल्यवान माना गया है। अल्प समय में ही इस पुस्तक का संशोधित तथा परिवर्धित द्वितीय संस्करण का प्रकाश में आ जाना इसकी महत्ता को ही उजागर करता है। प्रथम संस्करण-२०४८ वि.सं. (१९९१ ई.), पृष्ठ सं.-२५४ (१४+२४०)। द्वि.सं.-२०५० वि.सं. (१९९३ ई.), पृष्ठ सं.-४०४ (२०+३८४)।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों, विचारों, व्यक्तित्व और कर्तृत्व का तथ्यपरक परिज्ञान के लिए मीमांसक जी द्वारा सम्पादित व प्रकाशित दयानन्द-वाङ्मय का परिशीलन अपरिहार्य है, क्योंकि अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित दयानन्द-साहित्य में अनेक त्रुटियाँ विपश्चिज्जनों ने परिलक्षित की हैं।

देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय तथा पं. घासीराम द्वारा लिखित-संगृहीत-सम्पादित ऋषि दयानन्द का जीवन चरित (१-२ भाग) का भी सम्यक् संशोधन पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने किया है।[२२]

वेद-वेदाङ्ग विषयक विशिष्ट शोधपूर्ण लेख (संस्कृत)

१. मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्-इत्यत्र कश्चिदभिनवो

विचार:- इस निबन्ध में इस सूत्र पर ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा नये रूप में विचार किया गया है-वेदवाणी (वाराणसी)-१९५२ ई.।

२. वैदिकछन्द: संकलनम् इस लेख में निदानसूत्र, उपनिदानसूत्र, पिङ्गल छन्द:शास्त्र, ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी आदि ग्रन्थों में वैदिक छन्द:सम्बन्धी जितने भेद-प्रभेद दर्शायें हैं, उन सब का संकलन किया गया है-सारस्वती सुषमा (वाराणसी)-१९५४ ई.।

३. ऋग्वेदस्य ऋक्संख्या-ऋग्वेद की ऋग्गणना सम्बन्धी मतभेदों का विवेचन-सारस्वती सुषमा (वाराणसी)-१९५५ ई.।

४. यजुषां शौक्ल्यकार्ष्ण्यविवेक:- इस लेख में यजुर्वेद सम्बन्धी शुक्ल तथा कृष्ण भेदों की मीमांसा की है-सारस्वती सुषमा (वाराणसी)-१९५६ ई.।

५. अष्टाध्याय्या अर्धजरतीया व्याख्या-इसमें अर्वाचीन वैयाकरणों द्वारा की गई अष्टाध्यायी व्याख्या की आलोचना की गई है-सारस्वती सुषमा (वाराणसी)-१९६० ई.।

६. भारतीय भाषा-विज्ञानम्-भाषा विज्ञान के सम्बन्ध में भारतीय मत की विवेचना परक यह शोधपत्र संस्कृत विद्वत्सभा बड़ौदा में अगस्त १९६० में पढ़ा गया। गुरुकुल पत्रिका-मई, जून, जुलाई १९६१ ई. के अंकों में प्रकाशित।

इसी का परिशोधित रूप लखनऊ से Ludwik sternbach filicitation volume में छपा।

७. आदिभाषायां प्रयुज्यमानानाम् अपाणिनीयप्रयोगाणां साधुत्वविवेचनम्-इस लेख में संस्कृत भाषा के प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में प्रयुज्यमान अपाणिनीय पदों के साधुत्व की विवेचना की गई है- वेदवाणी (वाराणसी) दिसम्बर १९६१, जनवरी १९६२ ई.।

८. वेदानां महत्त्वं तत्प्रचारोपायाश्च- 'राजस्थान संस्कृत सम्मेलन'-१९६६ के भीलवाड़ा (राज.) के अधिवेशन के अवसर पर 'वेदपरिषद्' के सभापति-भाषण के रूप में पठित तथा गुरुकुल-पत्रिका और संस्कृत-रत्नाकर में प्रकाशित-१९६६ ई.। पुस्तक रूप में उपलब्ध (संस्कृत तथा हिन्दी), तृतीय संस्करण १९९६ ई.।

९. संस्कृतभाषाया राष्ट्रभाषात्वम्-यह लेख 'राजस्थान संस्कृत सम्मेलन' के भीलवाड़ा अधिवेशन के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका १९६६ ई. तथा गुरुकुल पत्रिका-अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर १९६६ ई. में प्रकाशित हुआ। पुस्तक रूप में उपलब्ध (अनुवाद सहित), १९७२ ई.।

१०. असाधुत्वेनाभिमतानां संस्कृतवाङ्मये प्रयुक्तानां शब्दानां साधुत्वासाधुत्वविवेचनम् 'अखिल भारतवर्षीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' अक्टूबर १९६६ के देहली अधिवेशन में पठित तथा गुरुकुल पत्रिका में प्रकाशित (अप्रैल-मई-१९६७ ई.)।

११. श्रीमद्भगवद्यानन्दसरस्वतीस्वामिनो वेदभाष्यस्य वैशिष्ट्यम्-'आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान' की हीरक जयन्ती (नवम्बर १९६६) में पठित तथा गुरुकुल-पत्रिका (जनवरी-फरवरी १९६७ ई. में प्रकाशित।

१२. वेदसम्मेलनस्याध्यक्षीयं भाषणम्- 'राजस्थान संस्कृत परिषद्' के द्वितीय अधिवेशन (अजमेर-१८-१९ मार्च १९७५) में वेद सम्मेलन का अध्यक्षीय भाषण, परिषद् द्वारा मुद्रापित ।

१३. विलुप्तानां पर:सहस्राणां संस्कृत शब्दानां समुद्धारे अष्टाध्याय्या: साहाय्यम्-'इंटरनेशनल सेमिनार ओन पाणिनि' (९-१४ जुलाई १९८१) में पूना विश्वविद्यालय के सभागार में पठित।

क्रमश:

वैचारिक क्रान्ति के लिये सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

पुरुष अध्याय - यजुर्वेद ३१

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी शृंखला में यजुर्वेद-३१ 'पुरुष अध्याय' की व्याख्यानमाला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।

-सम्पादक

पुरुष एवेदं सर्वं यद्‌भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।

हम यजुर्वेद के ३१वें अध्याय की चर्चा कर रहे हैं। इससे पहले हमने ३१वें अध्याय का पहला मन्त्र, जिसकी हमने चर्चा की, उसे देखा उसमें हमने देखा कि जिसको हम समझाना चाहते हैं, वह एक परिचित शब्द है, किन्तु जिसको उस शब्द से बताने जा रहे हैं, वह इस सामान्य प्रचलित शब्द से अलग है। समझने और समझाने का एक नियम होता है- जो चीज हमको आती है या जिसको हम जानते हैं उसको सामने रखकर एक अनजानी चीज को समझाया जाता है। एक वस्तु जिससे हम परिचित हैं हम उसे पुरुष कहते हैं, मनुष्य या प्राणी कहते हैं। यह हम जानते हैं, इसका हमारा प्रत्यक्ष है। हम इस प्रत्यक्ष से, इस जानी गयी वस्तु से, जो नहीं जानी गयी है उसको जानते हैं। तब वह वस्तु वही नहीं होती। वही होती तो वह जानी हुई होती। एक मनुष्य को हमने यहाँ देखा और बाजार में वैसा ही कोई दिखता है तो हम उसे मनुष्य कह देते हैं, क्योंकि वे दोनों एक है। एक है, तो यहाँ भी वही है और वहाँ भी वही है। किन्तु जब कुछ भिन्नता होती है तो हम उसके लिए एक शब्द प्रयोग करते हैं 'जैसा'। जैसा वह है ऐसा। तो इसमें सबकी सब बातें समान हों यह सम्भव नहीं है। तो कुछ बातें समान होती है और कुछ बातें भिन्न होती है। तो इसी तरह से इस संसार में जड़ और चेतन दो हैं। इन दोनों को तो समझना बहुत आसान है, क्योंकि जो-जो लक्षण चेतन के हैं वो जड़ में नहीं होते और जो लक्षण जड़ के हैं वे चेतन में नहीं होते। सन्देह की स्थिति तब आती है जब हम एक चेतन से दूसरे चेतन को समझना चाहते हैं, क्योंकि जड़ व चेतन का जितना भेद है उतना भेद दोनों चेतन में नहीं है। तो कितना है और कितना नहीं है, कितनी समानता है और कितनी भिन्नता है। जो समानता है उसके आधार पर जो-जो नाम, जो-जो संज्ञा इसकी होती है वो उसकी भी हो सकती है। तो चेतन इस मनुष्य को, प्राणी को, जीवात्मा को हमने पुरुष कहा। हमें कारण समझ में आया कि वेद ने शरीर को पुरी कहा है। अथर्ववेद का एक मन्त्र है- अष्टा चक्रा नव द्वारा देवानाम् पूरयोध्या। यह देवताओं की नगरी है। तो इस नगरी में रहने के कारण से, पुरी में रहने के कारण से हमने इसे पुरुष कहा था और यह देखने में बहुत सारे हैं इसलिए यह एक नहीं है। हमने देखा था कि मन्त्र में 'सः' शब्द का प्रयोग हुआ था। एकवचन का प्रयोग हुआ था। तो जो चेतन है- ये चेतन अनेक हैं और जिस चेतन की हम मन्त्र में चर्चा कर रहे हैं, वह 'एक' है। तो किन अर्थों में समान है, किन अर्थों में भिन्न है, विशिष्ट है- उसे दूसरे मन्त्र में इस तरह से कहा है- पुरुष एवेदं सर्व... रोहति। इस मन्त्र के विचार का जो बिन्दु है, केन्द्र है, वो है 'ईशानः'। इसलिए इस मन्त्र का देवता ईशानः कहा गया है। लेकिन यह ईशान किसका वाचक है। पिछले मन्त्र में हमने जिसे पुरुष कहा है, वही पुरुष इस ईशान का अभिप्रेत है। इस ईशान से बताया गया है। 'ईश' शब्द जो है वह

स्वामित्व का वाचक है और उसी से ईश्वर शब्द बनता है। तो स्वामित्व के लिए दो चीजें स्वाभाविक है – एक जो स्वामित्व में है ओर एक वो जो उसका स्वामित्व कर रहा है। तो इस संसार में जो कुछ है, इसका स्वामित्व किसके पास है? स्वामित्व चेतन के पास है, इसलिए मनुष्य के पास भी स्वामित्व है। प्राणी के पास भी अपने शरीर का स्वामित्व है, अपनी इन्द्रियों का स्वामित्व है, अपनी इच्छाओं का स्वामित्व है तो स्वामित्व हमारे पास भी है और स्वामित्व परमेश्वर के पास भी है तो अन्तर क्या है? इसको समझने के लिए हम जो लोक प्रचलित शब्द है, हम जिन्हें सामान्य रूप से प्रयोग करते है, उनको भी यदि ध्यान में रखेंगे तो बात आपकी समझ में बहुत आसानी से आ जाएगी। हम इस शरीर के अधिष्ठाता को, स्वामी को जीवात्मा कहते हैं, प्राण धारण करने वाला आत्मा। लेकिन आत्मत्व समान होने से, भिन्नता बताते हुए जब उसको सम्बोधित करते हैं तो हम उसे परमात्मा कहते हैं। अर्थात् हमारे में आत्मत्व समान है चैतन्य समान है, किन्तु हमारी चेतनता सीमित है, थोड़ी है, छोटी है और उसकी चेतनता परम है, अत्यन्त व्यापक है, बड़ी है। तो इस शब्द से दोनों बातों का पता चलता है कि एक वस्तु कुछ उससे साम्य रखती है, किन्तु उससे भिन्न है। तो आत्मत्व दोनों स्थानों पर समान है, किन्तु एक में जीवत्व है और एक में परमत्व है। वह परम होने से परमात्मा है और जीव होने से जीवात्मा है। ऐसे ही और भी बहुत सारे शब्दों का हम प्रयोग करते हैं। हम 'पुरुष' शब्द पर ही यदि विचार करें तो हम उसे परम पुरुष कहते हैं और प्राणी के देह को पुरुष कहते हैं। पुरुषत्व हम दोनों में है, परमात्मा में भी है और जीवात्मा में भी है। यह पुरुष सामान्य है और वह पुरुष परम है अर्थात् जिसका निवास स्थान बड़ा है, जो इस सारे संसार में एक मात्र निवास करने वाला है, इसलिए व परम पुरुष है और हम इस शरीर मात्र में है इसलिए हमारा जो पुरुषत्व है, सीमायें है, वे कम हैं, छोटी है। योग दर्शनकार ने जब परमेश्वर की परिभाषा की तो दोनों में अन्तर बताते हुए वहाँ भी पुरुष शब्द का प्रयोग किया और लिखा 'क्लेश कर्म विपाक आशयैरपरामृष्ट: पुरुष विशेष: ईश्वर:'। पुरुष विशेष: अर्थात् पुरुष सामान्य तो बहुत हैं लेकिन विशेष कब होता है– जब समानता बतायी जाए तो एकता आती है और विशेषता बताई जाए तो भिन्नता आती है। तो यहाँ 'पुरुष विशेष' भिन्नता बता रहा है। वे भिन्नतायें क्या है वे इस सूत्र में बताईं, उनकी चर्चा हम आगे करेंगे। यहाँ पुरुष विशेष कहकर के पुरुष सामान्य कहकर के जीवात्मा से, मनुष्य से, प्राणी से परमात्मा को भिन्न किया। इसी तरह से एक शब्द है ईश्वर जिसका अर्थ स्वामी होता है। हम स्वामित्व अपने अन्दर भी देखते हैं, लेकिन उसका स्वामित्व बड़ा है इसलिए हम उसे परमेश्वर कहते हैं। ईश्वरत्व राजा में भी होता है, ईश्वरत्व धनपति में भी होता है। यह जो ईश्वरत्व है यह सब जगह है, लेकिन किसी में कम है किसी में अधिक है और परमेश्वर में सबसे अधिक है, इसलिए उसे परमेश्वर कहते हैं। तो इस तरह से सामान्य शब्दों से भी हम दो चीजों के अन्तर को जान सकते हैं। तो इसलिए यह जो सन्देह मन में पैदा होता है कि वह हम जैसा है या हम ही हैं, यह सन्देह निराकृत हो जाता है, हट जाता है। उसकी जो क्षमता तो हमारे अन्दर नहीं है। हम सीमित है, सूक्ष्मं है, अणु है और वह सर्वव्यापक है, सब जगह व्याप्त है। सब जगह उपस्थित है। मन्त्र का शब्द है– 'पुरुष एवेदम् सर्वम्'। हमारे अन्दर जब इस शब्द की विवेचना करने की, विचार करने की बात आती है तो अर्थ तो हमें समझ में आ गया– इदम् सर्वं पुरुष एव। अब यह सब का सब जो है वो पुरुष ही है। पुरुष ही है में सन्देह क्या रहता है? कि जैसे हम इस शरीर मात्र को पुरुष मानते हैं, तो हमको यह लगता है कि यह संसार मात्र, पुरुष है अर्थात् आत्मा के बाहर जो पुरुषत्व हमें प्रतीत हो रहा है, दिखाई दे रहा है, हम इस दिखने वाले को पुरुष मान रहे हैं और इसलिए जब यह वाक्य हमारे सामने आता है कि यह

संसार पुरुष है, हमको ऐसा लगता है कि यह दिखने वाला संसार है, यही ईश्वरत्व का वाचक है, किन्तु इस बात को यदि हम समझना चाहें तो मोटे रूप में देखने में समझ में नहीं आता। इसको समझने के लिए एक बड़ा अच्छा-सा उदाहरण है कि मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी जीवन में एक बार उस सत्य से सामना करता है। उस दिन उसे यह पता लगता है कि जो दिख रहा है और जो नहीं दिख रहा है, यह दो हैं। जो दिख रहा है, वह, वह नहीं है जिसे मैं चाहता हूँ, सुनता हूँ, जिसकी बात मैं मानता हूँ। आप मेरे यहाँ आए। मैं आपका परिचय कराता हूँ,अपने घर के सदस्यों को, कहता हूँ कि यह मेरे पिताजी है, यह मेरे दादा जी हैं या ये मेरे अमुक हैं आपको जो दिखा रहा हूँ, वह एक साक्षात् चीज है। इन स्थूल आँखों से दिख सकने वाली चीज है। हमारे स्थूल नेत्र एक स्थूल वस्तु का देख रहे हैं और जो दिख रही है उसे हम वही कह रहे हैं। यही पुरुष है। यह मेरे पिता, यह मेरी माँ है। लेकिन यह सच, सच नहीं होता उस दिन जिस दिन मेरे पिता का देहान्त हो जाता है और अन्त्येष्टि अभी हुई नहीं होती है। तब मैं यह नहीं कहता कि यह जो यहाँ है, वह मेरा पिता है। तब मैं कहता हूँ - 'था'। मेरे पिता थे, वे चले गए। तो जो गया और जो है, दोनों अलग-अलग है। यदि यही मेरे पिता होते, फिर मुझे रोना ही क्यूँ आता? मैं इनको जलाकर ही क्यूँ आता? मैं इनको गाड़कर या बाहर फेंक कर ही क्यूँ आता। मैं फिर इस शव से प्रेम क्यूँ नहीं कर रहा? मैं इसके साथ रहने वाली वस्तुओं को भी इसके साथ बाहर डाल देता हूँ। कल तक तो मैं इन सब से प्रेम कर रहा था। कल तक इन सबसे अपने को जोड़ रहा था। इनको अपना बता रहा था, आज क्या हुआ? पता लगा कि यह जो दिखाई दे रहा था, यह वो नहीं था। वास्तव में जो था वो चला गया। उसके जाने के बाद पता चला, जो दिखाई दे रहा है, वह, वह नहीं है, क्योंकि एक दिखता है एक नहीं दिखता है तो जो दिखता है और जो नहीं दिखता है उसका पता कैसे लगेगा? जब एक में उपस्थित होगा और एक में अनुपस्थित होगा जो अन्तर है वही तो बताएगा। आप एक सब्जी है, दाल है उसको देखिए- उसमें नमक है या नहीं कैसे पता चलेगा? देखने से नहीं पता लगता। देखने के बाद चखने से यह पता लगता है कि एक में है और एक में नहीं है। यह बात तब पता लगती है, जब मैं एक सामान्य मृतक को देखता हूँ, उस समय पता लगता है कि जो नहीं दिखने वाली चीज थी, वो इसमें से चली गयी वो चली गयी, यह बोध केवल तब होता है जब उसकी मृत्यु हो जाती है। यह जो उदाहरण है, वह इसी तरह का है कि हम एक शरीर को देखकर जीवात्मा समझते हैं तो क्या हम ऐसी भूल नहीं कर रहे कि संसार को देखकर उसे परमात्मा समझ रहे हैं। इस संसार को ही परमात्मा मान रहे हैं, क्योंकि हमारी प्रवृति है इस शरीर को ही जीवात्मा समझने की। हमारा अभ्यास है, हमारा ज्ञान है, हमारा व्यवहार है कि हम इस शरीर को पुरुष मानकर के चेतन जीवात्मा मान करके व्यवहार कर रहे हैं और यह व्यवहार हम जीवन भर करते रहते हैं। तब तक करते रहते हैं, जब तक यह दो अलग नहीं हो जाते। इनमें से जब एक चला जाता है तब दूसरे की निरर्थकता का हमें पता लगता है। तब हम उस निरर्थक को त्याग देते हैं, छोड़ देते हैं। वैसे ही यहाँ भी तो हो सकता है अर्थात् जो दिखने वाली चीज है उसे मैं परमात्मा समझ रहा हूँ। जैसे इस शरीर में जीवात्मा के रहने से सक्रियता है, वैसे ही संसार में उसके (परमेश्वर के) रहने से संसार में नियमितता है। लेकिन अन्तर है- मैं संक्षिप्त हूँ, छोटा हूँ, अणु हूँ, तो मेरे जाने-आने की सम्भावना है। मैं इस शरीर में आया हूँ, तो मैं इस शरीर से जा सकता हूँ। लेकिन परमेश्वर के साथ ऐसा नहीं है। इस सारे संसार में वह सदा से था, सदा से है और सदा से रहेगा। ऐसे में उसको अलग करके कैसे देखें यह हमारी समस्या है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा आरम्भ की गई आर्यसमाज की शास्त्रार्थ-परम्परा को गरिमापूर्ण आगे बढ़ाने वाले महारथियों में अग्रणी स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती जी को शत शत नमन

- श्री कन्हैयालाल आर्य

स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के विचारों के अनुरूप स्थापित गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने अपनी स्थापना के एक दशक के पश्चात् से ही राष्ट्र को ऐसे मनीषी देने प्रारम्भ कर दिये थे, जिन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन में सहभागिता, आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के माध्यम से देश एवं समाज के उत्थान में अभूतपूर्व योगदान दिया, उन्हीं में से एक है पं. बुद्धदेव विद्यालंकार (संन्यासाश्रम प्रवेश के पश्चात् स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती), जिन्होंने अपनी प्रखर बुद्धि, महान् चिन्तन शक्ति, अलौकिक वक्तृत्व शक्ति तथा शास्त्रार्थ में महारत के कारण देश-विदेश में प्रचुर ख्याति प्राप्त की।

आपका जन्म मुद्‌गल गौत्र के एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण परिवार में पं. रामचन्द्र रामवती जी के घर १ अगस्त १८९५ ई. को कोलागढ़ ज़िला सहारनपुर में हुआ। आपके बचपन का नाम श्री नवीनचन्द्र था। आपका परिवार एक सात्विक परिवार था। आपने नवीनचन्द्र से स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती बनने तक लम्बी जीवनयात्रा तय की। आपके पिता पं. रामचन्द्र जी महर्षि दयानन्द जी के विचारों से अत्यन्त प्रभावित थे। आप पर भी ऋषि दयानन्द के विचारों का प्रभाव पड़ा। आपने अपनी आत्मकथा में लिखा भी है, ''मेरे जीवन पर जिस वस्तु का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा है, वह ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र है।'' यह प्रभाव दिन-प्रतिदिन अगाध श्रद्धा में बढ़ता गया और उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ऋषिवर दयानन्द एवं आर्यसमाज के लिए समर्पित कर दिया।

सात वर्ष की आयु में गंगा पार गुरुकुल कांगड़ी में प्रवेश, नवीनचन्द्र से बुद्धदेव नाम धारण करना, वर्ष १९१६ में 'विद्यालंकार' की उपाधि प्राप्त करना, कुछ समय गुरुकुल में संस्कृत साहित्य का अध्यापन, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में वैदिक अनुसन्धान का शुभारम्भ, वैदिक विचारधारा को जन-जन तक पहुँचाने के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक, महोपदेशक, समय-समय पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान आदि पदों पर आसीन रहते हुए पंजाब के आर्यसमाजों का सुदृढ़ीकरण आपकी जीवनयात्रा के प्रमुख अंग रहे हैं। इसी समय आपने संस्कृत साहित्य के साथ-साथ अंग्रेजी साहित्य का भी गहन अध्ययन किया। जहाँ आप संस्कृत भाषा धाराप्रवाह की तरह बोल व लिख सकते थे वहाँ आपका अंग्रेजी भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था।

एक प्रगल्भ विद्वान् होने के साथ-साथ आप एक अच्छे वक्ता भी थे। आपकी वाणी में सरस्वती का वास था। आप वक्तृत्व कला में इतने निष्णात थे कि जिस रस में चाहे श्रोताओं को बहा ले जाते थे-हँसाना, रुलाना, जोश दिलाना सब कुछ आपके लिए सम्भव था। आप उच्चकोटि के लेखक एवं ओजस्वी वक ता के साथ-साथ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी द्वारा प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्तों के प्रति अटूट निष्ठावान् तथा वैदिक आदर्शों पर पूरी तरह से चलने वाले थे। आप आवश्यकतानुसार वैदिक ऋचाओं, शतपथ ब्राह्मण, सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों को उद्‌धृत करते थे। यही कारण है कि आप के विचारों का विरोध करने वाले पौराणिक विद्वान् भी आपके बुद्धिमत्ता पूर्ण तर्कों के आगे निरुत्तर हो जाते थे।

ऋषि दयानन्द जी द्वारा वर्णित वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार आपने विधिवत् ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यास आश्रम की क्रमशः दीक्षा ली। आर्यजगत् के मूर्धन्य संन्यासी स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने आपको संन्यास की दीक्षा दी।

आप एक प्रतिष्ठित लेखक भी थे। आपकी कृतियों में मौलिक उद्भावनाओं को व्यक्त करने, उनके विवेचन एवं विश्लेषण की अपूर्व मीमांसा के दर्शन होते हैं। आपने अपने विचारों को बहुत सुबोध भाषा, आकर्षक शैली तथा तर्कसम्मत ढंग से लेखबद्ध किया है। जब स्वामी समर्पणानन्द जी की जन्मशताब्दी प्रभात आश्रम मेरठ में मनाई गई तब उनके मुख्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी ने उनकी विद्वत्ता पर निम्न विचार प्रस्तुत किये, ''मेरे मस्तिष्क में प्रश्न उत्पन्न हुआ-जिस व्यक्ति की हम जन्मशती मना रहे हैं, क्या वह केवल एक सुशिक्षित व्यक्ति मात्रा था अथवा कुछ और भी? बहुत ऊहापोह एवं चिन्तन के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुंचा कि वह केवल व्यक्ति मात्र नहीं किन्तु विचार थे। उनके लिखित ग्रन्थ कायाकल्प, पञ्चयज्ञ प्रकाश, गीताभाष्य, ऋग्वेद-मण्डल-मणिसूत्र, शतपथ ब्राह्मण भाष्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद का आशिंक भाष्य, किस की सेना में भर्ती होंगे, कृष्ण की या कंस की? सप्त सिन्धु सूक्त, वेदों के सम्बन्ध में क्या जानो और क्या भूलो आदि ग्रन्थों का आलोडन, परिशीलन करने से स्पष्ट हो जाता है कि इन ग्रन्थों का लेखक केवल असाधारण विद्वान् ही नहीं अपितु अपराजेय ऊहा, विलक्षण प्रतिभा, रहस्य उद्घाटिनी मेधा एवं अतर्क्य पाण्डित्य का भी धनी था।''

संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी तीनों भाषाओं पर आपका समान अधिकार प्राप्त था और तीनों में ही आपने कुछ न कुछ लिखा है- यद्यपि प्रमुखता हिन्दी भाषा में साहित्य सृजन को दी, ताकि उनके विचार जनसामान्य तक पहुँच सकें और वे उन्हें सरलता से आत्मसात् कर सकें। विचार अभिव्यक्ति के लिए आपने गद्य, पद्य एवं एकांकी, प्रत्येक रूप का आश्रय लिया है। आपके गवेषणापूर्ण ग्रन्थ एवं लेख आपकी अलौकिक मेधा एवं पाण्डित्य का दिग्दर्शन कराते हैं। यही नहीं आपकी काव्य प्रतिभा भी किसी से छिपी नहीं है। आप द्वारा रचित भक्तिरस से परिपूर्ण कवितायें, गीत, भजन मूल नाम या उपनाम से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में तो छपते ही रहे हैं, उनके संकलन पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हुए हैं। 'बिखरे हुए फूल' एवं 'उसकी राह पर' आपकी उत्कृष्ट काव्य रचनाएँ हैं। महर्षि दयानन्द के जीवन-प्रसंगों पर आधारित कुछ कविताएँ भी आपने रची हैं। 'भक्ति लहरी', 'आनन्द षट्पदी' एवं छुटपुट संस्कृत पद्य रचनायें आपके संस्कृत-वैदुष्य को उजागर करती हैं।

आपकी महर्षि दयानन्द के प्रति अपार श्रद्धा थी। सन् १९६६ में स्वामी जी का आवास कुछ समय के लिए आर्यसमाज विधानसरणि कलकत्ता में था। वहाँ उनके विविध विषयों पर व्याख्यान हुआ करते थे। एक दिन कलकत्ता के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य रमाकान्त जी ने स्वामी समर्पणानन्द जी का परिचय देते हुए यह कहा, 'स्वामी जी का वेदज्ञान अद्भुत एवं इस युग में सर्वश्रेष्ठ है।' यह कहते हुए उन्होंने यह भी कह दिया कि स्वामी जी का मन्त्रार्थ ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य से भी अधिक स्पष्ट प्रतीत होता है। इसको सुनकर दूसरा कोई अन्य व्यक्ति होता तो बहुत प्रसन्न होता और फूलकर कुप्पा हो जाता और प्रत्येक स्थान पर अपनी विद्वत्ता की डींग मारता, परन्तु स्वामी समर्पणानन्द जी पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। रमाकान्त जी को बीच में ही रोककर उन्होंने कहा, ''कहाँ स्वामी दयानन्द और कहाँ मैं साधारण व्यक्ति?'' और कहा भी कुछ ऐसे भावावेश में जैसे उनको लगा हो- मेरी प्रशंसा में आचार्य रमाकान्त ने ऋषि दयानन्द का अपमान कर दिया है। ऐसे ऋषिभक्त थे ''स्वामी समर्पणानन्द जी।''

''गीता को मैंने आर्यसमाजी बना लिया है'' ये शब्द थे पं. बुद्धदेव विद्यालंकार जी के। स्थिति यह है कि पं. बुद्धदेव जी गंगा तट पर आसीन एक पुस्तक में तल्लीन हैं। एक दर्शक ने उन्हें पहचाना एवं पास आकर नमस्कार किया और देखा कि हाथ में गीता है। आश्चर्य से पूछा, ''पण्डित जी! क्या आप सनातनी हो गये हैं?'' पं. बुद्धदेव जी ने उत्तर दिया, ''बन्धु! मैं सनातनी

(पौराणिक) नहीं हुआ। गीता को आर्यसमाजी बना दिया है'' कालान्तर में जनता ने पं. जी का लिखा गीता भाष्य पढ़ा और उनके कथन के सार को जाना।

आप भूल स्वीकार करने में एक क्षण भी नहीं लगाते थे। एक संस्मरण डॉ. रामनाथ वेदालंकार जी ने पावमानी पत्रिका में दिया था, वह इस प्रकार है, ''एक बार की बात है, पं. बुद्धदेव के बहनोई पं. भगवद्दत्त वेदालंकार के सुपुत्र का गुरुकुल में नामकरण संस्कार होना था। भगवद्दत्त जी ने मुझे संस्कार कराने के लिए कहा। मैं पौरोहित्य नहीं करता हूँ, अत: मैंने उन्हें मना कर दिया पर जब उन्होंने कहा कि पं. बुद्धदेव जी की ऐसी इच्छा है, तब मुझे मानना पड़ा। संस्कार में मैं बालक की माता को पति के बाएँ भाग में बैठाने लगा, तब पं. बुद्धदेव जी बोले- यह क्या करते हो? यज्ञ में पत्नी दक्षिणाङ्गी होती है।'' मैं उस समय संकोची अधिक था, पं. जी की बात पलटता कैसे? उनके आदेशानुसार कर दिया। बालक का नाम पं. जी ने सुझाया, वेदमूर्त्ति। संस्कार समाप्ति पर भी मुझे पं. बुद्धदेव जी को तो कुछ कहने का साहस नहीं हुआ, भगवद्दत्त जी को मैंने संस्कार विधि खोलकर दिखाई कि इस संस्कार में ऋषि दयानन्द जी के पत्नी को पति के वामांग में बैठना लिखा है। मैं अपने मकान पर चला गया। कुछ देर पश्चात् देखता हूँ कि पं. बुद्धदेव जी चले आ रहे हैं। आकर कहने लगे, ''अपनी भूल स्वीकार करने आया हूँ। तुम ठीक करा रहे थे। ऋषि दयानन्द जी ने इस संस्कार में पत्नी को वाम भाग में बैठाना ही निर्धारित किया है।'' मैं उनके इस बड़प्पन पर मुग्ध हो गया। मेरी उस समय आज जैसी स्थिति नहीं थी, न ही मेरा कोई ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था। मैं एक साधारण शिक्षक मात्र था। उस समय मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के सम्मुख अपनी भूल स्वीकार करना एक बहुत बड़ा कार्य था। ऐसे थे पं. बुद्धदेव विद्यालंकार। उनको शत-शत नमन करने को मन करता है।

''भगवान् कृपा करके आपको जेल में ही रखे और आपका सत्याग्रह चलता रहे'' ये शब्द थे हिसार जेल में जेलर जेल अधिकारी एवं जेल सुपरिंटेन्डेन्ट हिसार के। बात उन दिनों की है जब आपके नेतृत्व में पंजाब में हिन्दी सत्याग्रह किया गया था। करनाल रेलवे स्टेशन पर आपकी गिरफ्तारी हुई थी और आप अन्य सत्याग्रहियों के साथ हिसार की बोर्स्टल जेल में बन्द कर दिये थे। इस अवसर पर प्रात: ३ बजे ही शतपथ ब्राह्मण और वेदों पर प्रवचन होने प्रारम्भ हो जाते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रात:काल की अमृतवेला में ज्ञान और विज्ञान की वर्षा हो रही थी। वहीं जेल में आपके व्याख्यान होते थे जिनको सुनने के लिए हजारों सत्याग्रहियों के साथ-साथ वार्डन, जेलर एवं जेल सुपरिंटेन्डेंट भी उपस्थित होते थे। जेल अधिकारी प्राय: हँसते हुए कहते थे, स्वामी जी! भगवान् कृपा करके आपको जेल में ही बन्द रखे और आपका यह सत्याग्रह चलता रहे, ताकि हम लोगों को इस वेदामृत पान का सुअवसर निरन्तर प्राप्त होता रहे। यह उनकी अलौकिक प्रतिभा थी कि वे निरन्तर ४० दिन तक वेद के 'अग्नि' शब्द पर ही व्याख्यान देते रहे। पं. इन्द्रराज जी, मेरठ ने उन व्याख्यानों को 'वैदिक अग्नि प्रकाश' के नाम से प्रकाशित कराया था।

आप सदैव शास्त्रार्थ करने के लिये उद्यत रहते थे। सन् १९६२ में सनातन धर्म के प्रसिद्ध उद्‌भट विद्वान् करपात्री जी की अध्यक्षता में सर्ववेद शास्त्र सम्मेलन का आयोजन हुआ। महामहोपाध्याय पं. गिरधर शर्मा ने 'वेदों में इतिहास है या नहीं?' यह प्रश्न उठाया। श्री करपात्री जी ने इसका समाधान स्वयं कर दिया यह कहकर कि वेदों में 'नित्य इतिहास है' उनके नित्य इतिहास का व्याख्यान भी विचित्र था। उन्होंने पहले कल्प में राम, सीता, नदियाँ, ऋषि आदि जैसे हुए वैसे ही इसी कल्प में हुए। पं. जी को उत्तर देने को न कहा गया। करपात्री जी ने रामानुज सम्प्रदाय के पीठाधिपति को भी न बोलने दिया। पं. जी ने स्थिति को भांपा और करपात्री जी से नम्र निवेदन किया कि उन्हें इस विषय पर बोलने की आज्ञा

दी जाये। आज्ञा मिलने पर पं. जी अत्यन्त नम्र एवं मधुर वाणी में बोले, ''क्यों न वेद से पूछें कि विश्वामित्र आदि क्या वस्तु है? ये कोई ऐतिहासिक व्यक्ति हैं या कुछ और? आइये हम भगवती श्रुति का आश्रय लें। यजुर्वेद के ३४वें अध्याय का ५५वाँ मन्त्र इस प्रकार है-''**सप्त ऋषयः प्रतिहिता शरीरे, सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादा**'' प्रस्तुत किया और कहा कि ये देहगत इन्द्रियों के नाम हैं। इन्द्रियों के सात गोलक ही तथाकथित सात ऋषियों के रहने के स्थान है।'' यह सुन दाक्षिणात्य पण्डित हर्षित हो गये और बोले, ''आज यह अर्थ जान हम कृत-कृत्य हुए हैं एवं पहली बार हमें वेदार्थ का रहस्य पता चला है। वेदरूपी तीर्थ में स्नान कर हम धन्य हो गये हैं।'' दाक्षिणात्य विद्वानों की निष्पक्ष, निश्चल, स्वाभाविक प्रशंसात्मक उद्‌गार का कोई विरोध न कर सका। परिणामत: उनकी इस शास्त्रार्थ में विजय हुई। पं. बुद्धदेव जी यह कल्पना करके गये थे कि बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों से दो-दो हाथ खेलेंगे, परन्तु उन्हें अपना पाण्डित्य प्रकट करने का अवसर ही नहीं मिला। वेदरक्षक सिंह की उपस्थिति मात्र से ही ये दिग्गज घबरा गये।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे आर्यजगत् में बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे एक सिंह के समान थे। मंच पर लोक कल्याण सत्य के प्रतिपादन करने के लिए जब वे सिंह गर्जना करते थे तो विरोधी चाहे, पौराणिक हो या पाश्चात्त्य विद्वान् सभी घबरा जाते थे। शिक्षा के क्षेत्र में वे इतनी योग्यता के मालिक थे कि यदि वे केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही रहते तो उच्चतम पद से निवर्तमान होते, परन्तु उन्होंने तो अपना जीवन स्वामी दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द जी को समर्पित कर अपना नाम सार्थक किया था।

आप जहाँ एक अच्छे विद्वान्, एक ओजस्वी वक्ता, एक कलाप्रेमी, उच्चकोटि के लेखक, शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञ थे, वहाँ आप नाटक की कला में भी बहुत प्रवीण और एक अच्छे कलाकार थे। आप जब हिसार जेल में थे तब वाद्ययन्त्रों के अभाव में तानपूरे के स्थान पर हारमोनियम तथा तबले के स्थान पर तसले का प्रयोग कर अपनी रचनाओं को स्वरों में गा-गा कर प्रात:काल की उस अमृत वेला में संगीत को नया जीवन प्रदान कर देते थे।

अर्थ शुचिता का स्वामी जी विशेष ध्यान रखते थे। एक बार किसी यात्रा में जा रहे थे, उनके साथ दो शिष्य भी थे। गाड़ी आई और सभी बैठ गये। गन्तव्य स्थान आने पर उतर कर चल दिये और कुछ दूर निकल गये तो एक सेवक ने कहा, ''स्वामी जी मेलगाड़ी थी और हमारे पास टिकट था साधारण ट्रेन का। यह सुनकर स्वामी जी ने कहा, अरे! इतना बड़ा अपराध, सरकार की चोरी। चलो लौटो, रेलवे विभाग को अतिरिक्त यात्रा व्यय दें।'' सेवक ने कहा, ''अब तो गाड़ी यहाँ से चली गई। अब वहाँ कौन बैठा है? जब गाड़ी चली गई, टी.टी.ई. भी गाड़ी के साथ चल गया तो यह अतिरिक्त पैसा किसे देंगे?'' स्वामी जी इस निवेदन से चले तो आये किन्तु मार्ग में उन्होंने अनेक बार कहा, ''आज बहुत बड़ा अपराध हो गया। अज्ञान में ही सही, चोरी तो हुई।'' यह थे हमारे चरित्र नायक स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती जी। आज हमारे जैसे कार्यकर्त्ताओं, अधिकारियों एवं उपदेशकों के लिए यह एक चेतावनी है। हम कई बार ऐसी बातों को साधारण ढंग से ले लेते हैं। वह महामानव इस छोटी-सी भूल को अपराध की कोटि में गिनता है, धन्य हैं ऐसे महामना स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती जी महाराज।

आपको कर्मफल पर अटूट विश्वास था। एक बार की बात है कि स्वामी जी को हार्निया का रोग हो गया। कुछ अचम्भित होते हुए स्वामी विवेकानन्द जी ने पूछा, ''स्वामी जी! आपकी दिनचर्या तो पर्याप्त निश्चित है। फिर यह रोग आपको कैसे हो गया। स्वामी जी ने मुस्कराते हुए कहा, अरे भाई, जो मैंने अच्छे कर्म किये हैं, उनको पूरा आर्यजगत् जानता है, अत: प्रशंसा भी करता है।

परन्तु जो मैंने बुरे कर्म किये होंगे, उनको तो अन्तर्यामी परमेश्वर जानता है, इसीलिए उसी का फल दे रहा है। इसमें आश्चर्य की क्या बात है?''

आर्यजगत् के निष्ठावान् विद्वान् डॉ. रामप्रकाश जी ने 'ऐसे थे स्वामी समर्पणानन्द' नामक लेख में उनके प्रति जो भाव प्रकट किये हैं उन का कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत है-

''स्वामी जी की सूझ निराली थी पर अद्वितीय थी उनकी ऋषि भक्ति और प्रभु भक्ति।'' ''पावन पावन दयानन्द'' तो उनका अद्भुत भाषण था। ऋषि गुणगान करते समय उन्हें अपनी सुध नहीं रहती थी। 'उस योगी का भेद न पाया नादान लोगों ने' यह उनकी वाणी नहीं, रोम-रोम गाता था। यह गाते हुए वे अनायास बैठे-बैठे खड़े हो जाते, फिर बैठ जाते, फिर खड़े हो जाते। मानो दयानन्द उनके सामने विराजमान हो और वे उन्हें पाकर आनन्द विभोर हो उठे हों। उनके शब्दों में वही बल था जो स्वामी श्रद्धानन्द के 'कल्याण मार्ग के पथिक' के समर्पण शब्दों में है। वही बल था जो ऋषि दर्शन के पश्चात् पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी के मौन में था।

वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। शतपथ ब्राह्मण के अद्भुत भाष्यकार थे। वर्ण व्यवस्था को उनकी तरह कौन समझेगा? लेखक थे, गीतकार थे, वाणी पर सरस्वती नाचती थी। शास्त्रार्थ महारथी थे, धुन के धनी थे। अपनी इच्छा के राजेश थे, ईश्वरभक्त थे...सबकुछ थे। पर सबसे बढ़कर ऋषि भक्त थे। उन्हें इस आर्यसमाज रूपी उद्यान के पत्ते-पत्ते से प्यार था। यूं तो वे बुद्ध थे, देव भी थे पर समर्पण का आनन्द उन्होंने ही पाया था। वे सच्चे समर्पणानन्द थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के 'मिशन' के लिए समर्पित वेदपथ के अनुगामी तथा आर्यजगत् के विश्वविश्रुत नेता स्वामी समर्पणानन्द जी सरस्वती १५ जनवरी १९६९ को गम्भीर अवस्था के कारण अपने मन में संजोये हुए कतिपय स्वप्नों को मूर्तरूप दिये बिना ही इहलोक लीला समाप्त हो गई और यहाँ रह गई उनकी स्मृतियाँ जो आज भी आर्यों के हृदय पटल पर अंकित हैं।

सहयोगी ग्रन्थ :

१. शतपथ के पथिक स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती एक बहुआयामी व्यक्तित्व भाग-१ एवं भाग-२

२. 'पावमानी' का विशेषांक जो स्वामी जी के ११२वें जन्मदिवस पर प्रकाशित हुआ था।

३. स्वामी जी के गीता भाष्य पर समर्पण भाष्य के रूप में पं. इन्द्रराज जी मेरठ द्वारा संक्षिप्त परिचय

- मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

आवश्यक सूचना

परोपकारी के सूधि पाठकों से निवेदन है कि कृपया अपना नाम व पते के साथ दूरभाष/चलभाष संख्या भी अंकित करावें ताकि परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रमों से सम्बन्धित सूचनाएँ आपको दूरभाष/चलभाष पर मैसेज के माध्यम से भेजी जा सकें।

परोपकारिणी सभा

दूरभाष संख्या - ८८९०३१६९६१

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।-**महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२**

सिंहावलोकन – सत्य के सूर्योदय की एक अमरगाथा

परम आदरणीय इतिहास मर्मज्ञ श्री राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा सम्पादित 'महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र' पर आधारित

मुरादाबाद में स्वामी दयानन्द का दिव्य संवाद (जुलाई १८७९)

आगमन - ज्योतिर्मय ऋषि का स्वागत

३ जुलाई १८७९ की पुण्य प्रभा प्रभात– जब मुरादाबाद की पवन धरती ने वैदिक प्रभा के ज्योतिर्मय आचार्य, स्वामी दयानन्द सरस्वती के चरण-स्पर्श से पावनता पाई। इस बार भी स्वामी जी राजा जयकिशन दास जी के निवास पर ठहरे – जैसे कोई याज्ञवल्क्य या विश्वामित्र पुन: जनपथ पर प्रकट हुआ हो।

व्याख्यान: गोरों की सभा में सत्य की निर्भीक गर्जना

स्वास्थ्य की सीमा के चलते ऋषिवर ने मात्र तीन व्याख्यान दिए, परंतु इनमें जो प्रभाव और चेतना संचारित हुई, वह युगों तक स्मरणीय बनी रही।

अंग्रेज़ अधिकारी श्री स्पीडिंग, जो स्वयं जवाइंट मजिस्ट्रेट थे, ने निवेदन कर स्वामी जी को अपने गृह में राजनीति विषय पर व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया। यह व्याख्यान न केवल अंग्रेज़ अधिकारियों, न्यायविदों और संभ्रांतजनों के समक्ष हुआ, बल्कि इतिहास के पृष्ठों में एक साहसी संत द्वारा विदेशी सत्ता के सम्मुख सत्य का निर्भीक उद्घोष बनकर अंकित हुआ।

स्वामी जी ने वेदवाणी की गूंज में 'सत्यार्थप्रकाश' के मंत्रोच्चारण से जो व्याख्यान प्रारम्भ किया, वह गूंज की भाँति कोठी की दीवारों से टकराता हुआ हृदयों में उतरता चला गया। जब उन्होंने कहा कि राजा और प्रजा दोनों का धर्म परस्पर निष्ठा, न्याय और कर्तव्य परायणता है, तो सभा स्तब्ध रह गई।

श्री स्पीडिंग ने स्वयं खड़े होकर स्वामी जी की वाणी को सत्य का घोष बताकर नतमस्तक स्वीकार किया।

स्वभाषा का स्वाभिमान: जहाँ भाषा आत्मगौरव बन जाए:

विचारों की गरिमा और मौन की मर्यादा के मध्य सभा सजी थी। तभी एक क्षण ऐसा आया, जब मुरादाबाद के एक प्रतिष्ठित वकील बाबू काली प्रसन्न, सभा स्थल पर किसी व्यक्ति से अंग्रेज़ी में वार्तालाप करने लगे।

यह एक साधारण घटना प्रतीत हो सकती थी, पर ऋषि दयानन्द की दृष्टि में यह एक सांस्कृतिक चेतना का संकट था।

स्वामी जी ने तत्काल उन्हें रोकते हुए गंभीर स्वर में कहा –

'सभा में बैठ कर ऐसी भाषा में बात करना जिसे अन्य लोग न समझ सकें, न केवल अनुचित है, अपितु यह तो वैचारिक चोरी जैसी बातहै।'

उनकी आँखों में आत्म गौरव की ज्वाला थी, और शब्दों में भारतीय आत्मा की पुकार। वे बोले –

'आप अंग्रेज़ी जानने का अभिमान कर रहे हैं, किंतु यहाँ ऐसे अंग्रेज़ अधिकारी भी उपस्थित हैं, जो न केवल आपसे अधिक अंग्रेज़ी जानते हैं, बल्कि मुझे आपकी बात समझा भी सकते हैं।'

फिर थोड़ा रुककर, उन्होंने व्यंग्य मिश्रित वैदिक गर्व के साथ कहा –

'यदि मैं इसके स्थान पर संस्कृत में बोलने लगूं– तो आप कहाँ जाओगे?

ऋषि का यह प्रश्न, केवल उस वकील से नहीं था– यह था समस्त देशवासियों से, जो स्वभाषा को छोड़, पर भाषा में प्रतिष्ठा ढूँढने लगे थे। स्वामी दयानन्द का यह कथन केवल भाषाई आग्रह नहीं था। वह एक मानसिक दासता का खण्डन था। उनका उद्देश्य केवल 'अंग्रेज़ी' का विरोध करना नहीं, बल्कि स्वभाषा में

श्रद्धा और आत्मबल का बीजारोपण करना था।

यह प्रसंग भारतीय सभ्यता की उस चेतना को झकझोरता है जो उपनिवेशी मानसिकता से ग्रस्त होकर अपने ही शब्दों से परायापन अनुभव करने लगी थी। ऋषि दयानन्द का यह तात्त्विक विरोध, स्वभाषा को पराधीनता से उबारने का शंखनाद था।

उनकी यह सीख आज भी उतनी ही प्रासंगिक है:

आत्म स्वीकार की महिमा: विनय का प्रतिमान

एक अवसर पर जब वार्तालाप के दौरान संस्कृत के एक शब्द का उच्चारण स्वामी जी से असावधानीवश अशुद्ध हो गया, तो एक विद्वान् पण्डित नारायण ने आपत्ति की।

स्वामी जी ने नम्रता से स्वीकार किया–

'हाँ, मुझसे सहज भूल हुई है।'

पर जब पण्डित बार-बार उसे रेखांकित करने लगे, तो स्वामी जी ने संयमित परंतु दृढ़ स्वर में कहा–

'अरे बालक! मैंने गलती मानी और तू अब भी गर्व कर रहा है? विद्वता तो संवाद में होती है, न कि पकड़-धकड़ में।'

एक व्रती का दीक्षा-संकल्प: वर्षा में तपस्वी, धर्म में अडिग

यह वर्ष १८७९ का वह क्षण था जब मुरादाबाद की धरती पर आकाश की वर्षा और आत्मा की प्यास एक साथ उतर रही थी।

मुंशी इन्द्रमणि जी, स्वामी दयानन्द के निकट उपस्थित थे और उनके साथ एक युवक रामलाल यदुवंशी भी था, जो अपने गाँव कायमगंज से वर्षा, कीचड़ और कठिनाइयों को पार कर केवल ऋषि दर्शन हेतु आया था।

मुंशी जी ने कहा–

''महाराज! यह युवक अनेक कष्टों को सहता हुआ केवल आपके दर्शन और उपदेश के लिए आया है।''

स्वामी जी की आँखों में संतोष की ज्योति जल उठी। उन्होंने स्नेहपूर्वक पूछा–

''क्या तुम वहाँ के पंडित बलदेव प्रसाद को जानते हो, जिन्हें मैंने वेदधर्म का उपदेश दिया था?''

युवक ने उत्तर दिया–

''हाँ महाराज! वे तो आज भी वेदधर्म का प्रचार कर रहे हैं।''

फिर स्वामी जी ने पूछा–

''वंशीधर पंडित का क्या हुआ? जिसने हमारे समक्ष पाषाण मूर्तियाँ फेंक दी थीं?''

युवक ने धीमे स्वर में बताया–

''महाराज, वह ब्राह्मणों और रिश्तेदारों के दबाव में आकर पुनः मूर्तिपूजा करने लगा है।''

दीक्षा की ज्वाला: यज्ञोपवीत और आत्मबोध

अगले दिन मुंशी इन्द्रमणि जी ने रामलाल को प्रेरणा दी–

''यह संन्यासी केवल विद्वान् ही नहीं, बल्कि धर्मात्मा, परोपकारी और सर्वहितकारी पुरुष हैं। तुम भी इनसे दीक्षा लो, यज्ञोपवीत धारण करो, जैसा अन्य अनेक श्रेष्ठजन कर चुके हैं।''

रामलाल पहले ही सत्यार्थप्रकाश पढ़ चुका था और ऋषि के उपदेश को सत्य का प्रतिबिंब मान चुका था।

उसने उसी दिन यज्ञोपवीत धारण किया। हवन सम्पन्न हुआ, और गायत्री मन्त्र को उसने शुद्ध स्वर में उच्चारित किया।

स्वामी जी ने प्रसन्न होकर उसके पीठ पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा–

''बेटा! यह शरीर चिरस्थायी नहीं है। जबतक तुम जीवित रहो, हमारी पुस्तकों से सीखते रहो और दूसरों को भी सत्य का उपदेश देते रहो।''

विरोध की आँधी में अडिग दीपक

जब रामलाल अपने गाँव लौटा, तो पर समाज में कोलाहल मच गया।

गौड़ ब्राह्मणों ने कटाक्षों के बाण चलाए। स्वजनों

ने दोषारोपणों की वर्षा कर दी। किंतु वह युवक धर्म में अडिग था, जैसे हिमालय पर्वत तूफानों के बीच।

उसने निर्भीक होकर कहा–

''यदि बकवास करोगे, तो मैं तुम सबको भी त्याग दूँगा। मैं किसी के मोहपाश में नहीं हूँ, न माता के, न पत्नी के। धर्म से बढ़कर मेरे लिए कुछ भी नहीं।''

सेवा और संकल्पः एक दश दिवसीय सत्संग

स्वामी जी दस दिनों तक मुरादाबाद में रहे। और रामलाल नित्यप्रति उनके पास उपस्थित रहता।

वह न केवल ऋषि का सेवक बना, बल्कि एक धर्मपथगामी प्रचारक, एक युग का प्रतिनिधि बनकर उभरा।

यह प्रसंग केवल रामलाल की नहीं–यह हर उस आत्मा की कहानी है जो सत्य के स्पर्श में अपना संपूर्ण जीवन अर्पित कर देती है।

वह युवक एक साधारण व्यक्ति था, परंतु सत्य का दीक्षित बनकर उभरा.

अभिवादनः नमस्ते का पुनर्जागरण

स्वामी जी और मुंशी इन्द्रमणि के मध्य यह प्रश्न उठा कि आर्यसमाजमें 'सलाम' के स्थान पर कौन–सा अभिवादन शब्द उपयुक्त होगा।

स्वामी जी ने स्पष्ट मत रखा–

'''नमस्ते' वेदों में प्रमाणित हैऔर उसमें समानता की भावना निहित है। राजा हो या रंक, सबको एक–दूसरे को आदर देना चाहिए। यह केवल शब्द नहीं, एक संस्कृति है।''

मुंशी जी ने पहले 'परमात्मा जयते' और 'जयगोपाल' जैसे शब्द चलाए थे, परंतु ऋषि ने संस्कृति और भाषा के शाश्वत मूल्यों के आधार पर 'नमस्ते' को पुनः स्थापित किया।

आर्यसमाज की स्थापनाः वर्षा में धर्मदीप प्रज्वलित

२० जुलाई, १८७९ को, वर्षा के बीच, राजा जयकिशनदास के आवास पर हवन और आर्यसमाज की स्थापना का कार्यक्रम हुआ। भीगे वस्त्रों में सैकड़ों जनसमूह एकत्रित था।

स्वामी जी ने कहा– ईश्वरेच्छा ऐसी ही थी जो वर्षा कम नहीं हुई तथा विलम्ब बहुत हो गया है। इनमें बहुत से धनवान सज्जन ऐसे भी हैं जो अपने निवास पर अबतक भोजन कर चुके होते इसलिए उचित है कि थोड़ा–थोड़ा मोहन भोग सबको दे दो तथा बाजार से पूरी कचौरी मंगवाकर सबको खिला दो। बन्द मकान में थोड़ी सामग्री से हवन कर दो। तदनुसार ऐसा ही किया

इस दिन मुरादाबाद में आर्यसमाज की स्थापना हुई। मुंशी इन्द्रमणि प्रधान, ठाकुर शंकरसिंह, कुँवर परमानन्द जैसे व्यक्तियों को पद सौंपे गए।

अपवादों का सामनाः अपमान नहीं, उत्साह

कुछ विरोधियों ने अफवाह फैलाई कि ''स्वामी जी ने मोहनभोग में थूक दिया'', ताकि आर्यों को बदनाम किया जा सके। कई पंचायतें बैठीं, बहिष्कार की धमकियाँ मिलीं।

कुछ डगमगाए, पर अधिकांश सत्यपथ पर अडिग रहे।

विदाः सूर्यअस्त नहीं होता

३१ जुलाई १८७९ को ऋषि मुरादाबाद से प्रस्थान कर बदायूँ की ओर बढ़े, जहाँ कुछ ही माह पूर्व आर्यसमाज की स्थापना हुई थी। मुरादाबाद के जन–जन के मन में सत्य, सेवा और स्वाधीनता का बीज बोकर वे आगे बढ़े।

जहाँ ऋषि होते हैं, वहीं युग परिवर्तित होता है

मुरादाबाद का यह प्रवास केवल एक संत का ठहराव नहीं था, यह था एक जागरण–यात्रा, एक संस्कृति की पुनर्प्रतिष्ठा, और एक वेद–गंगा का प्रवाह था।

धर्म, भाषा, शिक्षा, स्वाभिमान, सेवा, शास्त्रार्थ और संगठन–सबका समन्वय ऋषि दयानन्द की छाया में हुआ। मुरादाबाद इस ऋषि युग का सजीव साक्षी बन गया।

प्रस्तुति - श्री लक्ष्मण जिज्ञासु

महर्षि दयानन्द और पौराणिक पण्डितों का विश्वासघात

डॉ. महावीर मीमांसक

गुरु स्वामी विरजानन्द जी दण्डी महाराज से विद्या अध्ययन करने के बाद जब स्वामी दयानन्द जी गुरु दण्डी जी की अपनी उनकी पसन्द की वस्तु लौंग की थैली गुरु दक्षिणा में देकर गुरु दण्डी जी से आशीर्वाद लेने लगे तो गुरु दण्डी जी ने कहा कि दयानन्द, मुझे दक्षिणा देना चाहते हो तो मुझे मेरी पसन्द की दक्षिणा और वह यह कि भारत देश अविद्या के अन्धकार में डूबा हुआ है, वेद विद्या और आर्ष ग्रन्थों की विद्या के प्रचार में अपना जीवन लगा कर देश में अन्धकार को मिटाने में अपना जीवन लगाओ। स्वामी दयानन्द ने गुरु दण्डी जी के आदेश को सहर्ष शिरोधार्य करके दण्डी गुरु जी के आश्रम से विदा ली और सीधे कार्यक्षेत्र में उतर गये।

स्वामी दयानन्द जी महाराज ने कार्यक्षेत्र में उतर कर चहुँ ओर काम की धूम मचा दी। धर्मिक क्षेत्र में शताब्दियों से चल रहे धार्मिक अन्धविश्वासों और सामाजिक कुरीतियों के विरोध में प्रवचन द्वारा जहाँ जबरदस्त क्रान्ति का बिगुल फूंक कर सिंहनाद किया वहाँ लेखन कार्य द्वारा भी मोर्चा खोलकर विरोधियों को चेलैञ्ज किया। यह लेखन और प्रवचन का कार्य इतना महान् था कि स्वामी दयानन्द को लेखन कार्य करवाने के लिये अतिरिक्त लेखकों की आवश्यकता पड़ी। अब यह लेखन कार्य ऐसे उन्हीं व्यक्तियों के द्वारा करवाया जा सकता था जो पढ़े-लिखे योग्य विद्वान् हों। ऐसे योग्य विद्वान् तब तक ऋषि दयानन्द के मिशन धार्मिक और सामाजिक सुधारों की शिक्षा दीक्षा लेकर तो बने नहीं थे, अत: ये व्यक्ति ऐसे ही उपलब्ध सम्भव थे जो ऋषि दयानन्द के मिशन के विपरीत संसकारों के थे। केवल एक वफादार शिष्य मुंशी समर्थदान को छोड़कर शेष सभी लेखक पौराणिक थे जो समय-समय पर ऋषि दयानन्द के सुधार कार्यों के विरुद्ध लिखने का अवसर मिलते ही अमृत में विष की भान्ति जहर घोलने का अवसर ढूंढते रहते थे। यही बहुत बड़ा धोखा ऋषि दयानन्द के साथ हुआ। इन ऐसे गद्दारों ने ऋषि दयानन्द की पीठ में जो छुरे घोंपे उसके कुछ उदाहरण नमूने के रूप में हम यहाँ दिखायेंगे।

स्वामी दयानन्द जी के कालजयी अमरग्रन्थ को ही हम सर्वप्रथम लेते हैं। सत्यार्थप्रकाश में इन पौराणिक लेखकों ने इतने मनमाने फेरबदल किये कि सत्यार्थप्रकाश के अनेक संस्करण निकलने के बाद अभी तक भी सम्भवत: पूर्ण संशोधन नहीं हुआ है।

सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में श्राद्ध प्रथा का उल्लेख इन पौराणिक लेखकों ने ऋषि दयानन्द के मन्तव्य के विरुद्ध घुसेड़ दिया। एक बार ऋषि दयानन्द अपने प्रवचन में जब श्राद्ध प्रथा का खण्डन कर रहे थे तो अन्त में एक श्रोता ने प्रश्न उठाया कि यहाँ तो आप श्राद्धप्रथा का खण्डन कर रहे हो और अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में उस का समर्थन किया है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के उस प्रकरण को जब देखा तो उस श्रोता की बात सत्य निकली। स्वामी जी महाराज ने तब उस का संशोधन करवाकर श्राद्ध का खण्डन किया।

२. ऐसी ही कहानी यज्ञ के पशु हिंसा की है। प्रारम्भिक सत्यार्थप्रकाश में यज्ञ में पशु हिंसा का उल्लेख था। ऋषि दयानन्द को जब इस बात पता चला तो समाचार-पत्र में इसका खण्डन करके स्पष्टीकरण करना पड़ा और अनेक ऐसे उदाहरण हैं जो ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों के विरुद्ध रूढ़िवादी प्रथा के अनुसार लिखे गये थे। किन्तु प्रकाशन करते समय समर्थदान ने ऋषि का ध्यान आकर्षित किया तो प्रूफ रीडिंग में उन्हें शुद्ध किया गया। अभी भी ऐसे कई स्थलों पर विवाद बना हुआ है।

३. अब लीजिये वेद को। ऋषि दयानन्द ने वेदों के भाष्य का गुरुतर कार्य प्रारम्भ किया था। वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है ऋषि दयानन्द ने यह अद्‌भुत घोषणा की। "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में ऋषि दयानन्द ने भौतिक विज्ञान, सृष्टि विज्ञान के नमूने वैदिक मन्त्रों की व्याख्या के आधार पर प्रस्तुत किये। वेद के अपने भाष्य, जो पूरा भी नहीं कर पाये ऋषि ने अनेक भौतिक विज्ञान के नमूने प्रस्तुत किये। बाद में ऋषि के परम विरोधी महाराजा जयपुर के राजपण्डित पं. मधुसूदन ओझा को अपनी पुस्तक "वैदिक विज्ञानम्" सन् १८९४ में घोषण ाकरनी पड़ी "वेदे सर्वाः विद्या सन्ति।" निरुक्तकार यास्क मुनि के बाद सहस्रों वर्ष के अन्तराल के बाद ऋषि दयानन्द प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने वेद में भौतिक विज्ञान की न केवल घोषणा की अपितु वेद के मन्त्रों की व्याख्याा करके वेद में भौतिक विज्ञान को सिद्ध भी किया। आर्यबन्धुओं को ऋषि दयानन्द का यह अद्‌भुत वरदान अमर बनकर पुरोध का प्रभाव विश्व के धार्मिक इतिहास में अक्षुण्ण बनाये रखेगा। अन्य सम्प्रदायों का सृष्टि रचना सम्बन्धी सिद्धान्त तब धवस्त हो जायेगा जब एक मुसलमान का छात्र महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में तो सृष्टि की रचना वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर पढ़ेगा और घर पर मुल्ला मौलवी से कुरान शरीफ के आधार पर पढ़ेगा कि खुदा ने 'कुन' कहा और सृष्टि बन गई। वह कुरान शरीफ की गप्प पढ़कर कुरान को फेंक देगा। यही स्थिति क्रिश्चयन के बच्चे की होगी, जब वह सृष्टि की रचना की और सातवें दिन सूर्य को बना कर एक दिन का विश्राम किया। स्वाभाविक है कि जब सूर्य की रचना ७वें अन्तिम दिन हुई तो सूर्य से रचना के पहले ६ दिनों की गिनती कैसे हुई? वह बाईबिल को फाड़कर फेंक देगा। यही स्थिति अन्य सम्प्रदायों की होगी। आर्य ही केवल वेदविज्ञान को छाती लगाकर कहेगा कि आओ मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। इस भौतिक विज्ञान की आंधी में केवल वेद बचेगा, अन्य सब सम्प्रदाय अपनी ही मौत मर जायेंगे।

प्रसंग वेद में भौतिक विज्ञान का था। वेद को मौलिक और वास्तविक रूप से समझने के लिये स्वर ज्ञान और स्वर का उपयोग कितना अनिवार्य है इस सम्बन्ध में पाणिनि अष्टाध्यायी के महाभाष्यकार पतञ्जलि को उद्‌धृत करना अनिवार्य है और वह निम्न है-

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा,
मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्दशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।

स्वर (उदात्त अनुदात्त, स्वरित आदि) का अशुद्ध प्रयोग वर्ण का भी अशुद्ध प्रयोग, वक्ता के वास्तविक अभिप्राय को अभिव्यक्त नहीं करता। स्वर का अशुद्ध प्रयोग श्रोता (यहाँ यजमान का प्रसंग है) को ही मार डालता (हानि पहुँचाता) है, जैसे "इन्द्र शत्रु" शब्द में स्वर के अशुद्ध प्रयोग ने (यजमान को हानि पहुँचाई), अपना वास्तविक अभिप्राय प्रकट नहीं किया (जिस के कारण श्रोताओं ने उस का गलत अभिप्राय समझकर तदनुकूल आचरण नहीं किया) पाठकों को हम इसका वास्तविक अभिप्राय समझाते हैं, जो बड़े-बड़े विद्वानों को भी परेशानी में डाल देता है।

यहां इन्द्र शत्रु शब्द दो शब्दों के समास से बना है- १. इन्द्र और २. शत्रु। इन दोनों शब्दों में समास भी दो प्रकार का हो सकता है। तत्पुरुष समास जिसका विग्रह है इन्द्रस्य शत्रुः = इन्द्र का शत्रु। और २. बहुब्रीहि समास जिसका विग्रह है इन्द्रः शत्रुः यस्य (इन्द्र जिस का शत्रु है) अब पाठक कहेंगे इससे क्या अन्तर पड़ता है, दुश्मन अर्थ नहीं है अपितु यौगिक अर्थ है जो है शातयिंता, दबाने वाला। अब इन्द्र जिस का शत्रु है इस बहुब्रीहि समास में इन्द्र है शातयिंता, दबाने वाला पुत्र का और तत्पुरुष समास में इन्द्र का शातयिंता अर्थात् दबाने या हराने वाला बन जाता है वृत्र। यह इन्द्र और वृत्र के युद्ध का प्रसङ्ग है। ये इन्द्र और वृत्र कोई पौराणिक देवता और

राक्षस (असुर) नहीं हैं अपितु ये दोनों वृष्टि (बरसात) के लिये काम करने वाली उपयुक्त दो शक्तियां या अवस्थायें हैं- (विस्तार के लिये द्रष्टव्य लेखक की पुस्तक) ''वैदिक ज्ञान विज्ञान सम्पदा- एक झांकी'', में इन्द्र-वृत्र-युद्ध का वर्णन। शब्दों का प्रयोग में स्वर भेद होने से इतना अर्थभेद हो जाता है।

यह स्वर उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि लौकिक भाषा में भी प्रयुक्त होते हैं और अर्थभेद में उतना ही महत्त्व रखते हैं। स्वर (उदात्त, अनुदात्त स्वरित) का अर्थ है बलाघात का अधिक या कम लगाना। महावैयाकरण पाणिनि की परिभाषा के अनुसार ''उच्चैरुदात्त:'' (अष्टाध्यायी १.२.२९) अच् स्वर या बलाघात से उच्चारण करना उदात्त कहलाता है, ''नीचैरनुदात्त'' (अष्टध्यायी १.२.३०) निम्न स्वर या हल्के बलाघात से उच्चारण करना अनुदात्त कहलाता है और समाहार: स्वरित: (अष्टाध्यायी १.२.३१) समन्वित स्वर को उच्चारण करना स्वरित कहलाता है। यहाँ इन्द्र शत्रु शब्द में स्वर यदि तत्पुरुष समास होगा तो स्वर ''समासस्य'' (अष्टाध्यायी ६.१.२.७) से होगा जिसे लिख जायेगा इन्द्रशत्रु:। इसी प्रकार यदि यह बहुब्रीहि समास होगा तो पूर्व पद का आदि का स्वर उदात्त होगा और लिखा जायेगा इन्द्रशत्रु:। दोनों प्रकार के समासों का उच्चारण और अर्थ भेद हम बतला चुके हैं।

यह स्वर और स्वरभेद से अर्थ में अन्तर केवल वैदिक भाषा में ही नहीं चलता है अपितु लौकिक भाषा में भी बराबर उसी प्रकार से प्रभावशाली रूप से काम करता है। उदाहरणार्थ जब कोई बोलता है, ''मैं पढ़ूगा।'' इस दो शब्दों वाले वाक्य को जब वक्ता ''मैं'' शब्द का उच्चारण अधिक बलाघात से करता है और पढ़ूंगा शब्द पर बलाघात हल्का होता है तो उसका अर्थ है मैं ही पढ़ूंगा और कोई दूसरा नहीं। किन्तु इसके विपरीत वक्ता जब पढ़ूंगा शब्द को अधिक बलाघात से बोलता है और मैं शब्द को हल्के बलाघात से बोलता है तो उसका अर्थ होता है मैं पढ़ूंगा ही और कोई दूसरा काम नहीं करुंगा। लौकिक भाषा में स्वरभेद से ही अर्थ भेद नहीं बनता अपितु अल्पविराम आदि से भी अर्थ बनता है यथा- ''रोको, मत जाने दो'' और ''रोको मत, जाने दो।'' इत्यादि कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

खैर हमने जो अभी तक भाषा (लौकिक) में अर्थ भेद के कारकों के उदाहरण देने के लिये जो पापड़ बेले उनका उद्देश्य हम वेद के मन्त्रों की व्याख्या करने वाले उन पौराणिक अधकचरे विद्वानों की करतूत दिखाने के लिये है जिन्होंने वेदभाष्य करने के काम के पैसे वेतन तो ऋषि दयानन्द से लिया और उसी की पीठ में अपनी, महामूर्खता का छुरा घोंपा।

४- ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य में पौराणिक पण्डितों द्वारा प्रदूषण।

सत्यार्थप्रकाश में तो प्रदूषण किया ही किया, पौराणिक गद्दार पण्डित ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य में भी प्रदूषण करने से नहीं चूके। इस का एक उदाहरण हम सुधि पाठकों के लिये प्रस्तुत करते हैं। चारों वेदों में एक मन्त्र आता है, जिसका पूर्वार्द्ध (पहले दो चरण) पूरे एक जैसे समान है। वह मन्त्र है-

चन्द्रमाऽअप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं हरिरेति कनिक्रदत।।
यजुर्वेद अध्याय ३३ मं. ९०।।

यजुर्वेद के अतिरिक्त शेष तीन वेदों में इस का पता निम्न है-

ऋग्वेद मण्डल/सूक्त १०५, मन्त्र सं. ११

सामवेद पूर्वोचिक ५.१.३.९

अथर्व वेद काण्ड १८, सू. ४, मन्त्र सं. ८९

यहां हमारा सम्बन्ध मन्त्र के प्रथम चरण से है जो निम्न है

चन्द्रमाऽअप्स्वन्तरा

मन्त्र के इस प्रथम चरण के स्वर (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) से ही हमारा विचाणीय प्रसङ्ग है। उसमें भी

अप्स्वन्तरा इतने ही मन्त्रांश के स्वर पर हमारा प्रसंग आधारित है। यहां हमने अपने एकमात्र विचार मन्त्रांश को केन्द्रित करके चिह्नित कर लिया है स्वामी दयानन्द जी ने भी अपने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में शब्दों का अर्थ निर्धारण पहाड़ जितनी गलती बन जाती है। अब यहां पर अप्स्वन्तरा में दो शब्द हैं अप्सु और अन्तरा। दोनों की सन्धि होकर बन गया अप्स्वन्तरा। हमारे विषय का दारोमदार एकमात्र आधार यहां अप्सु शब्द है जो अन्तोदात्त है अर्थात् जिस का प्रारम्भिक अ अनुदात्त है। प्रदूषण के आधार का विषय यही आदि का अ है जो स्पष्ट रूप से अनुदात्त है। अनुदात्तादि अर्थात् आदि अनुदात्त वाला अप: शब्द वेद में उदक अर्थात् जल का वाचक होता है इसका प्रमाण निरुक्त शास्त्र के रचयिता यास्क मुनि का वैदिक निघण्टु है। जिसमें प्रारम्भ का अनुदात्त वाला अप: शब्द उदक नामों में पढ़ा हुआ है जो संख्या में एक शत (१०१) है, द्रष्टव्य, वैदिक निघण्टु अध्याय १, खण्ड १२ यद्यपि इसी निघण्टु में आदि उदात्त आप: शब्द अन्तरिक्षवाची नामों में भी पढ़ा हुआ है। स्वरभेद से एक शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ उदक और अन्तरिक्ष भिन्न-भिन्न अर्थों का वाचक बन जाता है। वस्तुत: इन भिन्न-भिन्न स्वर वाले भिन्न-भिन्न अर्थों में शब्दों को एक ही शब्द मानना बिल्कुल गलत है, ये दोनों शब्द एक-दूसरे से पूर्णत: भिन्न है। यहां इस अर्थ भेद का यह मन्तव्य है कि चन्द्रमा के लिये उदक अर्थ वाला अनुदात्तादि अप: शब्द बड़ा वैज्ञानिक महत्त्व रखता है। नासा अमेरिकी अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा पर यान भेज कर सन् २०१६ में यह पता लगाया कि चन्द्रमा के चारों तरफ पानी है अर्थात् चन्द्रमा चारों ओर से उदक (जल) से घिरा हुआ है, जबकि वेद का यह मन्त्र सृष्टि के प्रारम्भ से ही इस तथ्य का वर्णन कर रहा है, और हमने नासा के वैज्ञानिकों से पहले ही सन् २०१३ में वेद के इस मन्त्र के आधार पर इस तथ्य का उद्घाटन कर दिया था। यदि यहां स्वर को भुलाकर वेद के इस मन्त्र में प्रयुक्त अनुदात्तवादी अप शब्द को अन्तरिक्ष मान कर यह अर्थ करें कि चन्द्रमा अन्तरिक्ष में विद्यमान है, तो वेद के मन्त्र में इस अनुदात्तादि अप: शब्द का कोई महत्त्व नहीं रहेगा, क्योंकि यह तो सर्वविदित है ही कि चन्द्रमा अन्तरिक्ष में होता है, अन्यत्र नहीं। किन्तु आंख के अन्धे और गांठ के पूरों को कोई अन्तर नहीं पड़ता।

स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों के प्रकाशन के काम में लगे पौराणिक पण्डितों ने यही भयंकर प्रदूषण किया कि यजुर्वेद भाष्य में इस मन्त्र में प्रयुक्त अप्स्वन्तरा अर्थात् अप्सु+अन्तरा करके अप्सु का अर्थ अन्तरिक्ष कर दिया जिस का अर्थ व्याख्या बन गई चन्द्रमा अन्तरिक्ष में विद्यमान है, जिसके कारण मन्त्र में निहित महान् वैज्ञानिक तथ्य के योगदान का महत्त्व पूरी तरह समाप्त हो गया और ऋषि दयानन्द के भोले भक्त आज भी उसी लकीर के फकीर बने हुये हैं। मैंने अपनी पुस्तक "वैदिक ज्ञान-विज्ञान सम्पदा" में जब उपर्युक्त वेदमन्त्र की व्याख्या में जब इस वैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन किया तो ऐसे पण्डितंमन्य ने मुझ से अपना नाता ही तोड़ दिया। ऐसे संकीर्ण बुद्धि का ज्ञान का उद्धार करेंगे?

५. ऐसे ही एक और भयंकर भूल का पर्दाफाश करना आवश्यक है। ऋषि दयानन्द ने लॉर्ड मैकाले की आधुनिक शिक्षा प्रणाली को समाप्त करके गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का विधान किया और उसके लिये वर्णोच्चारण शिक्षा से लेकर वेदों का अध्ययन के लिये पाठ्यक्रम बनाया। उसी आर्ष पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों को पौराणिक पण्डितों ने सर्वथा गलत पुस्तकें लिखकर प्रस्तुत कर दिया। पौराणिक पण्डित न तो अष्टाध्यायी के मूलसूत्रों का अर्थ समझते थे और न ही महाभाष्य की एक भी पंक्ति का उनको ज्ञान था। व्युत्पत्ति प्रक्रिया के प्रकार को प्रवृत्त करने के लिये पाणिनि की अष्टाध्यायी के कौन से सूत्र मूलभूत हैं जिनके आधार पर शब्दों की व्युत्पत्ति प्रारम्भ होती है, इतना तक उनको पता नहीं था। शब्दों की व्युत्पत्ति के मूल को प्रवृत्त करने वाला भौतिक

सूत्र में का शर्त अन्तर्निहित है इसका पता तो तब उन्हें होता ना जब उन्हें अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़ा होता। भट्टो जी दीक्षित की सिद्धान्त कौमुदी तक उनका व्याकरण का ज्ञान सीमित था जिस सिद्धान्त कौमुदी में अष्टाध्यायी के अनेक प्रकरणों से सम्बन्धित सूत्र लुप्त कर बौना कर दिया है, इसको लिखने की आवश्यकता नहीं है, आर्ष पाठविधि के पण्डितों की गद्दारी और अष्टाध्यायी के ज्ञान की उनकी महामूर्खता का प्रमाण है उनके द्वारा लिखित नामिक और आख्यातिक ग्रन्थों की रचना जो ऋषि के नाम से १४ वेदाङ्गों में गिने जाते हैं। यह बहुत बड़ी भ्रान्ति है।

पाठकों को यह पढ़कर और सुनकर आश्चर्य भी होगा और हमारे कथन पर शायद अविश्वास भी। किन्तु हम सुधी पाठकों के समक्ष यह तथ्य सप्रमाण और शब्दों की व्युत्पत्ति की प्रक्रिया के नमूने पाणिनि के सूत्रों पर आधारित सप्रमाण देकर सिद्ध करेंगे कि पौराणिक पाखण्डी अधकचरे विद्वानों ने ऋषि के नामिक और आख्यातिक वेदाङ्गों में कितना आमूलचूल प्रदूषण किया है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी पुस्तक वेद और आर्यसमाज में इन पौराणिक पण्डितों द्वारा महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में किये गये प्रदूषणों के लेकर इनकी खूब धुनाई की है।

पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनुसार पदों की व्युत्पत्ति की सिद्धि प्रक्रिया का मूल आधार सूत्र है- समर्थः पदविधिः (अष्टाध्यायी २.१.१) सूत्र का अर्थ है कि पद-सम्बन्धी कोई भी विधान तभी किया जायेगा जब वह विधान समर्थ हो (पदविधिः समर्थ वेदितव्यः) काशिकावृत्ति। यह परिभाषा सूत्र में है ''सुप्तिङन्तु पदम्'' (१.४.१४)। अर्थात् सुप और तिङ् के अन्तवाला शब्द पद कहलाता है। तकनीकी प्रयोजनों के कारण इस से आगे के तीन सूत्रों में भी पदसंज्ञा का विधान है। यह वैय्याकरणों को विदित है लिखने की आवश्यकता नहीं है।

यहाँ अष्टाध्यायी २.१.१ में पदविधि का विग्रह है।

१. पदस्य विधिः पदविधिः। २. पदात विधिः पदविधिः। ३. पदे विधिः पद विधिः। इन तीन अवस्थाओं में पदविधि मानी जायेगी। यह स्मरणीय है कि यह परिभाषा (अष्टाध्यायी २.१.१) पदविधि की अवस्था में ही लागू होती है, अन्य प्रतिपादिक आदि विधियों में लागू नहीं होती।

स्वामी दयानन्द ने अष्टाध्यायी की व्याख्या जो वे पूरी नहीं कर पाये, में ''समर्थः पदविधिः'' (अष्टाध्यायी २.१.१) सूत्र को परिभाषा सूत्र लिखा है जिसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि स्वामी जी इस सूत्र को व्युत्पत्ति प्रक्रिया में अनिवार्य रूप से मौलिक सूत्र मानते थे जो पूरे अष्टाध्यायी शास्त्र में सर्वत्र लागू होनी चाहिये, क्योंकि परिभाषा वही होती है, जो एकदशेस्था सर्वं शास्त्रमभिज्वलयति, तदनुसार नामिक (प्रतिपादकों की व्युत्पत्मित प्रक्रिया) और आख्यात्तिक (धातुओं की व्युत्पत्ति प्रक्रिया) में इस सूत्र का विनियोग होना आवश्यक रूप से अनिवार्य था। किन्तु इस परिभाषा सूत्र को पूर्णतः लुप्त कर दिया, क्योंकि नामिक और आख्यातिक उन महामूर्ख पौराणिक पण्डितों ने लिखे थे जो भट्टो जी दीक्षित की सिद्धान्त कौमुदी तक का ही अष्टाध्यायी का ज्ञान रखते थे जिस सिद्धान्त कौमुदी में अष्टाध्यायी के अनेक प्रसङ्गों को काटकर फेंक दिया था और जो पौराणिक पण्डित स्वामी दयानन्द को धोखा देने के लिये ही नामिक और आख्यातिक लिख रहे थे। सिद्धान्त कौमुदी में भट्टो जी दीक्षित ने अष्टाध्यायी के कितने प्रसंगों को काटकर अष्टाध्यायी को समाप्त कर दिया, सुधी पाठकों को इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। रामचन्द्र की प्रक्रिया कौमुदी से ही यह शास्त्रीय कत्लेआम प्रारम्भ हो गया था, भट्टो जी दीक्षित इसी अभियान के एक निन्दनीय शास्त्रघातक व्यक्ति थे जिसने पाणिनि के नाम को मिटा डाला।

समर्थः शब्द का इस परिभाषा सूत्र (अष्टाध्यायी २.१.१) में का अभिप्राय है, इस विषय पर महाभाष्य में प्रश्न उठाते हुये पतञ्जलि (महाभाष्य के लेखक) ने

प्रश्न उठाया है, "अथ कः पुनः समर्थ?"

महाभाष्य में इस प्रश्न के उत्तर में बड़ी लम्बी विस्तृत चर्चा है। इस विषय पर हम अगले अंक में चर्चा करेंगे। प्रसंगवश व्युत्पत्ति प्रक्रिया की दुरुह व्याख्या करनी अनिवार्य है ताकि विद्वद्वृन्द के समक्ष विषय विशद हो जाये। और यह पता चल जाये के पाणिनि के नाम पर कितना विकृत भ्रामक और अधकचरा रूप परोसा जा रहा है। क्योंकि नामिक और अख्यातिक में प्रदर्शित व्युत्पत्ति प्रक्रिया में ही इन दोनों ग्रन्थों में अष्टाध्यायी और महाभाष्य की उपेक्षा और पूर्णतः अनमूलतः को प्रमाणिकता सिद्ध होती है। और यह भी सिद्ध होता है कि ऋषि दयानन्द ने ये दोनों पुस्तकें न लिखी और न ही पढ़ी। इतना समय उनके पास कहाँ था। अगले अंक में हम इसे और अधिक स्पष्ट करेंगे। निःसन्देह सिद्ध करेंगे।

क्रमशः

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में कई वर्ष से संचालित आयुर्वैदिक चिकित्सालय सोमवार को छोड़ सप्ताह में ६ दिन मार्च से अक्टूबर सायं ५ से ७ बजे तक व नवंबर से फरवरी सायं ४ से ६ बजे तक दो घण्टे खुलेगा।

इसमें वरिष्ठ आयुर्वेद चिकित्सक की सेवा उपलब्ध है। चिकित्सा परामर्श व चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ निःशुल्क दी जाती हैं। यदि आप अपने धन को इस पुण्य कार्य में लगाना चाहते हैं, तो परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सहयोग भेज सकते हैं। सहयोग भेजकर ८८९०३१६९६१ पर सूचित अवश्य कर देवें।

- मन्त्री

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर महर्षि दयानन्द सरस्वती की २००वीं जन्म-जयन्ती शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में ५० प्रतिशत की छुट

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये
विवाह पद्धति	२०
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	०२
वेदान्तिध्वान्त निवारण	०२
समाधी	१००
सामवेद शतक	३०
जिज्ञासा विमर्श	१००
इतिहास प्रदूषण	१००
इतिहास साक्षी	५०
वेदामृत	५०
सत्यासत्य निर्णय	२५
The Book of Prayer	35
Kashi Debate	20
A Critique of Swami Naryan Seet	20
An Examination of Vallabh Seet	20
Five Great Rituals of The Day	20
Bhramaccheden	25
Bhranti Nivarana	35
Atmakatha	20
Gokarunanidhi	12
Dayanand Interparetation of Vedas	05
संध्या सुरभि कलेण्डर	३५
महर्षि दयानन्द की शिक्षाएँ कलेण्डर	२५
The Pre Islamic Religious of Arabia	20
वेदमाता	१००
शंका समाधान	७०
ईश्वर	१५०
नवयुग की आहट	६०
वैदिक इस्लाम	१०
पं. आत्माराम अमृतसरी	१००
इतिहास बोल पड़ा	१००
मृत्यु सूक्त	२००
सत्यार्थ सुधा	१५०

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-

दूरभाष-**0145-2460120,**चलभाष- **7878303382**

विद्यार्थियों के सुधारकार्य में समर्पित जीवन
संस्कारयज्ञ की समिधा-स्मृतिशेष हरिश्चन्द्र गुरुजी (स्वामी श्रद्धानन्दजी)

-डॉ. नयनकुमार आचार्य

समाज व राष्ट्रनिर्माण के पावन उद्‌देश्य से कोई साधारण व्यक्ति अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर देता हो, तो निश्चय ही उसका नाम इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित हो जाता है। मानवतावादी विचार, वैदिक सुसंस्कार एवं आर्यसमाज की विचारधारा को विद्यार्थियों के निर्मल मन में समारोपित करने हेतु अपना पूरा जीवन तपानेवाले पूज्य हरिश्चन्द्र गुरुजी अर्थात् महाराष्ट्र के स्वामी श्रद्धानन्द जी इसी कड़ी में एक माने जाते हैं। गत २२ जून २०२५ की मध्यरात्रि को इस पवित्र आत्मा ने नश्वर देह त्यागकर परलोक की अनन्त यात्रा आरम्भ की। सर्वाधिक लगभग १०८ वर्ष की दीर्घायु पाकर गुरुजी ने जहां आज की अल्पजीवी व्यवस्था के सम्मुख सुस्वास्थ्य व दीर्घायु का आदर्श रखा, वहीं कर्महीन मानव जाति में परोपकार व समाजसेवा कार्यों के लिए नवचेतना भी जागृत की।

महर्षि दयानन्द की उज्ज्वल शिष्यपरम्परा के अनमोल रत्न गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द ने एक ओर अपने अनूठे त्याग, बलिदान, राष्ट्रीय कार्यों से आर्यजाति में प्राण फूंक दिए थे, वहीं दूसरी ओर उन्हीं का आदर्श सम्मुख रखकर विद्यार्थियों के नवनिर्माण में एक-एक पल व्यतीत करनेवाले अखण्ड ब्रह्मचारी हरिश्चन्द्र गुरुजी ने संन्यास दीक्षा के बाद अपना नामाभिधान ''स्वामी श्रद्धानन्द'' ही कर लिया। आज गुरुजी के मार्गदर्शन से अपना जीवन मानवी मूल्यों को आधार बनाकर जीनेवाला उनका विद्यार्थी वर्ग विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत हैं। महाराष्ट्र में जातिप्रथा के निवारण में जो एक पीढ़ी अग्रसर हुई तथा आर्यसमाज का काम करनेवाले वैदिक तत्वनिष्ठ कार्यकर्ताओं की जो एक समर्पित टोली उपलब्ध यदि किसी से हुई है, तो इसके मूल में पूज्य श्री हरिश्चंद्र गुरुजी (स्वामी श्रद्धानन्दजी) ही रहे हैं ।

तत्कालीन निजाम राज्यान्तर्गत महाराष्ट्र के धाराशिव (उस्मानाबाद) जिले के औराद नामक छोटे से गांव में १९१७ इस्वी में कार्तिक पूर्णिमा को सूर्यवंशी कुल में गुरुजी का जन्म हुआ। पिता रामराव एवं माता प्रयागबाई धार्मिक, सरलमना, सात्विक, सुव्यवहारी, श्रमनिष्ठ कृषक थे। उनकी शिक्षा समीपस्थ गुंजोटी ग्राम में हुई , जो कि हैदराबाद स्वतन्त्रता सग्राम का केन्द्र बिन्दु रहा और इसी भूमि में आर्यवीर वेदप्रकाश जी का बलिदान भी हुआ। परिसर में आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार होता रहा। फलस्वरुप औराद के ही श्री अंदाप्पा पालापुरे नामक किसान के पास से इन्हें सत्यार्थपकाश यह अमर ग्रंथ पढ़ने मिला। स्वाध्यायशील श्री हरिश्चन्द्र ने इस ग्रंथ का कई बार लगन से अध्ययन किया। इस ग्रंथ से उन्हें सही अर्थों में जीवन जीने की राह मिली। जगन्नियन्ता परमात्मा के साथ उनका सदैव संवाद होता रहा। अपने खेत में एक स्थान पर बैठकर वे एकाग्रतापूर्वक ईश्वर का ध्यान करते रहे और अपने जीवन का लक्ष्य खोजते रहे। ईश्वरानुकम्पा से एक दिन उन्हें ''अपना समपूर्ण जीवन विद्यार्थियों के सुधार हेतु समर्पित करने की प्रेरणा हुई।'' बस क्या था? राष्ट्र की भावी आशालताओं को सुसंस्कारित करने हेतु विवाह न कर उन्होंने नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा की। अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर इसी एकमात्र कार्य में तन, मन, धन से संलग्न हुए ।

सातवीं कक्षा के बाद उन्होंने अगली पढ़ाई बन्द की और अपने ही गांव में बच्चों के लिए निजी तौर पर पाठशाला खोली। वे स्वयं ही इस विद्यालय के पहले अध्यापक बन गए, तब से लेकर अन्त तक उनके नाम के

आगे ''गुरुजी'' यह उपनाम जुड़ गया। अपने अध्यापन के लिए उन्होंने शासन से कोई भी वेतन तक नहीं लिया। इतना ही नहीं, ग्रामवासियों के सहयोग से उन्होंने परिश्रम के साथ इस पाठशाला का भवन भी खड़ा किया। साथ ही ग्रामवासियों के लिए कुआं खुदवाकर पेयजल की व्यवस्था भी की। महिलाओं के लिए सार्वजनिक स्वच्छता गृह सुविधा, राहगीरों के लिए रास्ता बनवाना, बच्चों को समीप बुलाकर उन्हें नैतिकता का उपदेश देना, सामूहिक होली उत्सव, विजयदशमी शोभायात्रा आदि कल्याणकारी उपक्रम और अन्य परोपकार के कार्य भी गुरुजी ने अपने गांव में किये।

धीरे-धीरे गुरुजी का विद्यार्थी जीवन सुधार व निर्माण कार्य व्यापक रूप में बढ़ता गया। पड़ोसी गांवों के विद्यालयों एवं छात्रावासों में पहुंचकर गुरुजी अच्छे विद्यार्थियों की तलाश करते और उन्हें मानवता का उपदेश सुनाते। इसके पश्चात् उन्होंने महाराष्ट्र व कर्नाटक के अन्य जिलों में पहुंचकर अपना कार्यविस्तार करते रहे। बच्चों व युवा छात्रों से सम्पर्क कर वे उन्हें अपनी मधुर भाषा में वेद का पवित्र सन्देश सरलता से समझाने का प्रयत्न करते। उनकी एक अनूठी संवादशैली रही है। प्रश्नोत्तर के माध्यम से विद्यार्थियों की शंकाओं का वे बड़ी आसानी से समाधान करते रहते। वेद पतिपादित ''एक ईश्वर, एक उपासना पद्धति, एक ही मानव धर्म, एक ही मानवजाति, एक धर्म ग्रंथ-वेद, मानव का आहार-शाकाहार।'' इन बातों को वे विद्यार्थियों के हृदयपटल तक पहुंचाने काफी सफल रहे। इसका मूल कारण उनका सरल व सादगीपूर्ण तथा उच्चकोटि का विशुद्ध आचरण! विद्यार्थी सुधार के पवित्र कार्य हेतु दिन-रात निरन्तर पैदल ही भूखे-प्यासे घूमते रहे, इस श्रमनिष्ठ व्यक्तित्व ने कभी विश्राम नहीं किया।

जहां कहीं अच्छा विद्यार्थी मिल गया, बस उनके लिए मानों वह उत्सव बन जाता। विद्यालय अथवा महाविद्यालय का प्रांगण तथा छात्रावास का बरामदा उनके लिए संस्कारशाला बन जाती। उनकी इस सुधारयात्रा में जो उनसे मिलता,वह उनके उपदेश वचनों को जीवन में धारण कर व्यसनमुक्त, सदाचारी, सत्य वैदिक मार्ग का पथिक बन जाता। विभिन्न क्षेत्रों में कर्मरत गुरुजी की तीन पीढ़ियां आज डॉक्टर, इंजीनियर, अध्यापक, प्राध्यापक, पुलिस अधिकारी, व्यापारी, कृषक आदि बनकर आदर्श को जीवन में धारण करते हुए ईमानदारी से अपने कर्तव्य पथपर विराजमान हैं। इन्हें गुरुजी कब और कैसे मिलें ?...साथ ही अब वे कहां से कहां पहुंच गए? यह रोचक प्रसंग गुरुजी के विद्यार्थी आज भी गौरव के साथ बताते हैं, तब उन्हें सुनकर ''गुरुजी ने समाजक निर्माण में कितनी बड़ी क्रान्ति की है?'' यह ज्ञात होता है।

गुरुजी के बहुत सारे विद्यार्थी आर्यसमाज के अनुयायी वैदिक विद्वान व वेदप्रचारक भी बनें, जो कि देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार करने में सर्वतोमना तत्पर हैं। साथ ही वे आर्यसमाज तथा प्रान्तीय सभा की गतिविधियों को बढ़ाने में काफी सफल रहे हैं। मान्य डॉ. ब्रह्ममुनि जी, वैद्य विज्ञानमुनि जी, प्रा. अर्जुनराव सोमवंशी, वैज्ञानिक डॉ .बी.एम. मेहेत्रे, डॉ. तानाजी आचार्य, प्रा. सोनेराव आचार्य, डॉ. देविदासराव नवलकेले...आदि। यह एक लम्बी सूची बन जाती है। लेखक स्वयं भी गुरुजी के पावन सान्निध्य का कृपापात्र रहा है, जिसके कारण गुरुकुलीय शिक्षा, आर्यमय जीवनयापन करने तथा लेखनी व वाणी के माध्यम से वेदज्ञान का प्रचार व प्रसार करने का अल्पसा यत्न कर रहा है।

आर्यजगत् के प्रसिद्ध इतिहास लेखक प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने गुरुजी को ''गुदड़ी के लाल'' कहा है। वे अपना संस्मरण सुनाते हुए कहते हैं- जब मैं सोलापुर के डी.ए.वी. कॉलेज में प्राध्यापक था, तब गुरुजी हमारे पास आते थे। हमारे प्राचार्य श्री भगवानदास जी ने गुरु जी का परिचय ''पदयात्री'' के रुप में करवाया था। सच में पूज्य हरिश्चन्द्र गुरुजी ने न जाने कितने विद्यार्थियों का

उद्धार किया है। भूले -भटके छात्रों को मानवता की राह बताई। केवल "विद्यार्थियों का सुधारकार्य" इसी लक्ष्य को पूरा करने हेतु अपना सर्वस्व समर्पित करनेवाले हरिश्चन्द्र गुरुजी जैसे धर्मात्मा मिल पाना दुर्लभ हैं। १९ दिसम्बर १९९६ को गुरुजी की संन्यास दीक्षा के लिए आर्यजगत् के वीतराग संन्यासी स्वामी सर्वानन्द जी और मैं गुरुजी के गाव औराद पहुंचे थे। संन्यास आश्रम की दीक्षा देकर स्वामी सर्वानन्दजी ने अपने इस त्यागी शिष्य को आर्यजगत् का दूसरा "स्वामी श्रद्धानन्दजी" बनाया। किसी भी मान-सम्मान की अपेक्षा न रखने वाले इस महात्मा ने कर्नाटक के सुधाकर जी चतुर्वेदी के बाद सर्वाधिक आयु पायी है। स्मृतिशेष स्वामीजी (गुरुजी) के महनीय कार्यों को मैं श्रद्धापूर्वक नमन करता हूं।"

विद्यार्थी सुधारकार्य के मुख्य लक्ष्य के साथ ही गुरुजी ने ने मनुष्यकृत जातिव्यवस्था को तोड़ने के लिए सफलतम कृतिशील प्रयत्न किए हैं। अपने विद्यार्थियों तथा संपर्क में आये आर्यजनों को मतपन्थ एवं जातिव्यवस्था के दोषों को बतलाकर वे उन्हें अन्तर्जातीय विवाह करने हेतु प्रेरित करते थे। उनके प्रयासों से आज तक लगभग १५० अन्तरजातीय विवाह हो चुके है, जो निश्चय एकसंघ मानवजाति जोड़ने का क्रान्तिकारी कदम माना जाएगा।

प्रतिवर्ष गुरुजी ग्रीष्मावकाश में मानवता संस्कार शिविरों का आयोजन करते। आज तक उन्होंने लगभग ४० से अधिक शिविरों का आयोजन किया है। इन शिविरों में आर्यजगत् के विद्वानों को आमन्त्रित कर उनके व्याख्यानों के माध्यम से अपने विद्यार्थियों को वैदिक धर्म एवं आर्य समाज से जोड़ने का कार्य करते। "श्रेष्ठ मानव बनो और मानवता में वृद्धि करो!" यह गुरु जी के शिविरों का घोषवाक्य रहा है।

समाज व राष्ट्र की दुरावस्था को देखकर गुरुजी का हृदय को उद्वेलित हो उठता था। पराधीन देशवासियों पर होनेवाले अत्याचारों को देखकर उनकी रक्षा के लिए उनके क्षात्रतेज ने उग्र रूप धारण किया और वे कूद पड़े हैदराबाद स्वतन्त्रता संग्राम में! अपने गांव के पास से गुजरनेवाली रजाकारी रोहिलों की टोली पर उन्होंने बन्दूक चलाई और उन्हें तुरन्त वहां से भगा दिया। साथ ही भूमिगत रहकर उन्होंने आर्य क्रान्तिकारियों को भोजन पहुंचाने का भी कार्य किया। गोवा मुक्ति संग्राम व हिंदी रक्षा आन्दोलन में आप अपने ग्रामवासियों को साथ लेकर सम्मिलित हुए। गोहत्याबन्दी हेतु चलाए गए आर्य सत्याग्रह में भी आप सम्मिलित हुए थे।

प्रांतीय आर्य संगठन महाराष्ट्र आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्रीपद को आपने ६ वर्ष तक विभूषित किया। अपने शिष्य डॉ. ब्रह्ममुनिजी के मंत्रीत्व काल में आप १९ वर्ष तक प्रधान पद पर आसीन रहे। उनके नेतृत्व में महाराष्ट्र सभा ने दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति की और इस प्रान्तीय संगठन को सर्वदृष्टि से मजबूत एवं क्रियाशील बनाया।

उच्च आदर्शों से ओतप्रोत स्वामी जी का जीवन हम सबके लिए प्रेरणा की दीपशिखा है। अन्तिम समय तक वे उत्साही रहें। सदैव भ्रमन्ती करनेवाले स्वामीजी छोटी सी बीमारी के कारण एक माह तक रुग्णशय्या पर लेटे रहे। रुग्णावस्था में भी उनमें अपने कार्यों के प्रति प्रबल आत्मविश्वास झलकता रहा। स्वामीजी अपना नश्वर कलेवर छोड़कर संसार से भले ही विदा हुए, लेकिन उनका अजरामर कार्य युगों-युगों तक आनेवाली पीढियों को प्रेरणा देता रहेगा। परमात्मा पूज्य स्वामीजी (गुरु जी) को उनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार अग्रिम जीवन में भी उन्हें विद्यार्थियों के निर्माण के कार्य में संलग्न रखें, यही कामना! जीवनभर मानवता के प्रसार का व्रत धारण करनेवाले तपोधन गुरुजी (स्वामी जी) की विमल कीर्तिकाया को शत् शत् नमन!

संस्कृत विभागाध्यक्ष,
वैद्यनाथ महाविद्यालय , परली वैजनाथ
जिला-बीड़ (महाराष्ट्र)
9420330178

*** निवेदन ***

कीर्तिशेष आचार्य धर्मवीर जी ने अपने दानदाताओं के सहयोग से ऋषि उद्यान में निरन्तर चलने वाले ऋषि लंगर की व्यवस्था की थी, जो सतत संचालित हो रही है। इसमें ऋषि उद्यान की वृहद् भोजनशाला में **ऋषि उद्यान में निवास करने वाले योगसाधकों, संन्यासियों-वानप्रस्थियों, ब्रह्मचारियों व आचार्यों के भोजन, दुग्ध, फल इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।**

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों, विद्वानों, दर्शनार्थियों इत्यादि के निवास तथा भोजनादि की व्यवस्था इसके अन्तर्गत संचालित की जाती है।

आर्य दानदाता-परिवारों के सहयोग से ही यह अतिथि-यज्ञ सम्भव हो पा रहा है। अत: हम सभी आर्य परिवारों का दायित्व एवं कर्त्तव्य है कि हम इस यज्ञ में होता बनकर निरन्तर दान-रूपी आहुति प्रदान कर पुण्य के भागी बनें। विभिन्न संस्कारों एवं अन्य शुभावसरों पर अपनी दान-रूपी आहुति देना न भूलें, ताकि यह लोकोपकारी अतिथि यज्ञ निरन्तर चलता रहे।

इस अतिथि यज्ञ हेतु आप **५१००/-(पाँच हजार एक सौ रुपये) प्रतिवर्ष** भेजकर अपना सहयोग प्रदान कर अनुग्रहीत करें।

ओम्मुनि
प्रधान

कन्हैयालाल आर्य
मन्त्री

।। आवश्यक सूचना ।।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी सभा अजमेर के द्वारा संस्थापित एवं संचालित महर्षि दयानन्द गुरुकुल आश्रम , ग्राम-जमानी, त-इटारसी, जिला-नर्मदापुरम्, मध्यप्रदेश के नाम से दान की रसीद छपवाकर अनधिकृत रुप से कुछ लोग गुरुकुल के नाम से दान एकत्रित करके धन का दुरुपयोग कर रहे हैं, एकत्रित किये हुए दान को सभा में जमा भी नही करवाते हैं और न ही कोई हिसाब सभा को देते हैं।

आप सभी आर्य महानुभावों से निवेदन है कि अनधिकृत व्यक्तियों को दान न देवे, और यदि उपरोक्त नाम की रसीद से आपने दान दिया है तो उस रसीद को अथवा उसकी फोटोकापी को अति शीघ्र सभा के निम्न पते पर भिजवावे।

जिससे परोपकारिणी सभा द्वारा अनधिकृत रुप से रसीद छपवाकर दान एकत्रित करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही की जा सके।

मंत्री, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर, पिन- ३०५००१

दूरभाष - ९९१११९७०७३

ऋषि मेला-२०२५ की तारीख ७, ८ व ९ नवम्बर २०२५ से संशोधित करके **शुक्रवार, शनिवार व रविवार १०, ११ व १२ अक्टूबर २०२५कर दी गई है।**

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-

डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = ११००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
(VEDIC PUSTKALAYA , AJMER)
बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-
0008000100067176
IFSC - PUNB0000800
UPI ID :
0510800A0198064.mab@pnb

प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में सञ्चालित आर्ष गुरुकुल में प्रवेश प्रारम्भ हैं। वैदिक धर्म के उपदेशक-प्रचारक बनने के इच्छुक युवा प्रवेश हेतु शीघ्र आवेदन करें।

प्रवेश हेतु अविवाहित एवं आठवीं उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। भोजन एवं आवास की नि:शुल्क सुविधा है। **सम्पर्क सूत्र: ८८९०३१६९६१**

आर्य संस्थाओं से आग्रह

आर्य समाज एवं अन्य आर्य संस्थाएं अपने निर्वाचन, वार्षिकोत्सव और योग शिविर आदि आयोजन के संक्षिप्त समाचार परोपकारी में प्रकाशनार्थ भिजवा सकते हैं।

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं।

आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है।

दूरभाष - **8890316961**

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961**

‘सत्यार्थ प्रकाश’ एवं ‘महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र’ प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ ‘सत्यार्थप्रकाश’ ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति ‘वैचारिक क्रान्ति’ को जन्म दिया। अतः परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व ‘विश्व पुस्तक मेला’ दिल्ली में प्रतिवर्ष **‘सत्यार्थप्रकाश’** के साथ **‘महर्षि का जीवन-चरित्र’** एवं **‘आर्याभिविनय’** पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। ५०० **से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ ‘सत्यार्थप्रकाश वितरण’ अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

- कन्हैयालाल आर्य, मंत्री, परोपकारिणी सभा

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

भावभीनी श्रद्धांजलि

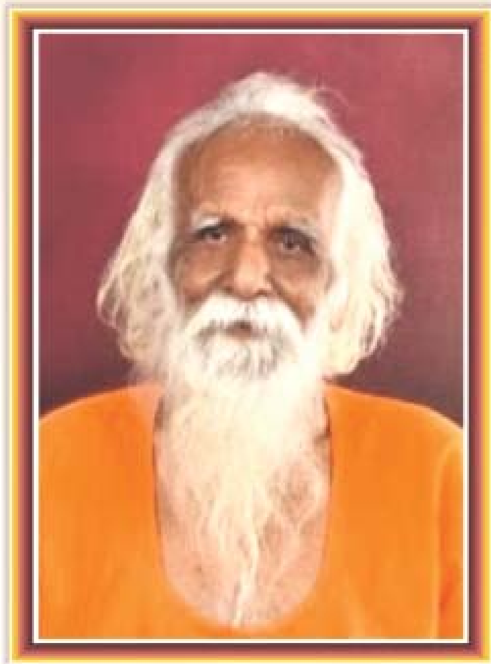

पूज्य हरिश्चंद्र गुरुजी

निर्वाण - दिनांक 22 जून 2025

कीर्तिशेष श्रद्धानन्द जी (श्री हरिश्चंद्र 'गुरुजी'), जो महर्षि दयानन्द के वैदिक सिद्धांतों के सशक्त प्रचारक थे और जिन्होंने महर्षि के सिद्धांतों को व्यावहारिक धरातल पर उतारने में पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। वे राष्ट्रीय आंदोलन के प्रेरक थे और जातिव्यवस्था के विरुद्ध उन्होंने आन्दोलन किया। एक ईश्वर, एक उपासना-पद्धति, एक ही मानवधर्म, एक ही मानवजाति, एक धर्मग्रंथ वेद और मानव का आहार-शाकाहार का मंत्र लेकर उन्होंने संपूर्ण महाराष्ट्र में जन-आंदोलन प्रदीप्त कर दिया। उन्होंने तीन-तीन पीढ़ियों में डॉक्टर, इंजीनियर, पुलिस अधिकारी, प्राध्यापक आदि को तैयार किया और मान्य डॉ. ब्रह्ममुनि जी, वैद्य विज्ञानमुनि जी, प्राध्यापक अर्जुनराव सोमवंशी, वैज्ञानिक डॉ. बी.एम. मेहता, डॉ. तानाजी आचार्य जैसे विद्वान और वैज्ञानिक तैयार किये। 'गुरुजी' के नाम से विख्यात तपोधन 'गुरुजी' को परोपकारिणी सभा की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि....!

"इदं नमः पूर्वजेभ्यः पथिकृद्भ्य!"

आर जे/ए जे/80/2024-2026 तक   प्रेषण : १४-१५ जुलाई २०२५   आर.एन.आई. ३९५९/५९

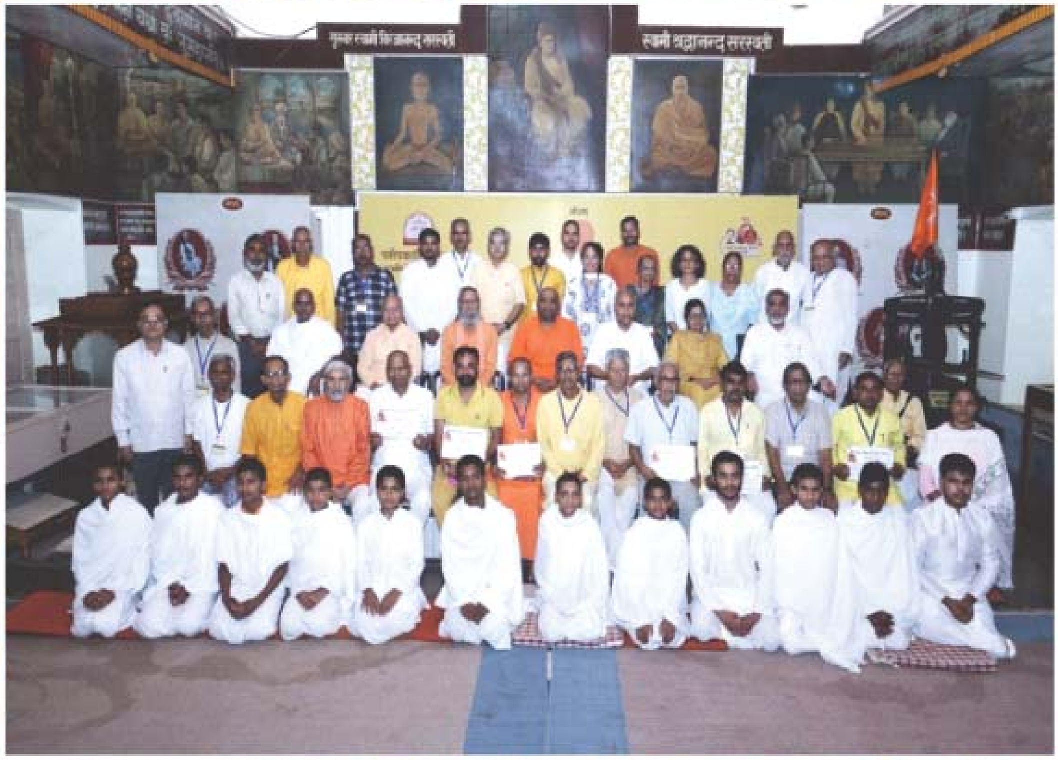

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर
में दिनांक 30 जून से 6 जुलाई तक आयोजित
'योग साधना स्वाध्याय शिविर'
के प्रतिभागियों, मार्गदर्शक आचार्यों, गुरुकुल के ब्रह्मचारियों-आचार्यों
का सामूहिक चित्र !

प्रेषक:
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,

डाक टिकिट